द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(साधनरहस्यम्)

अहं चेदं प्रवक्ष्यामि रहस्यं ज्ञानमुत्तमम्।
उक्तं भगवता भानो रहस्यं च प्रकाशकम् ॥१॥
प्रथमं शोधयेद् भूमिं स्थानानि च यथाविधि।
वर्णांश्चानुक्रमं कृत्वा वसुधां च विशोधयेत् ॥२॥
ततोऽधिवासयेद् देवं न्यासेन सकलीकृतम्।
मण्डलं च समालिख्य आचार्यः सुसमाहितः ॥३॥

अब मैं गोपनीय उत्तम ज्ञान का वर्णन करता हूँ, जिसे भगवान् (सूर्यदेव) द्वारा कहा गया है और जो सूर्यरहस्य-विषयक तथा प्रकाशक है। प्रथमतः भूमि तथा स्थान का यथाविधि शोधन करना चाहिये। अनुक्रम में वर्णों का विन्यास करके भूमि-शोधन करना चाहिये। तदनन्तर न्यास के द्वारा सकलीकृत देवता का अधिवास करके आचार्य को सुसमाहित होकर मण्डल अंकित करना चाहिये।।१-३।।

एकान्ते स नदीतीरे तीर्थेष्वायतनेषु च।
उद्यानकुसुमाकीर्णे चित्रप्रासादसङ्कुले ॥४॥
आकाशतलके चापि यत्र वा रोचते मनः।
पूर्वात्मावेशने चैव भूदेशे दोषवर्जिते ॥५॥
विप्रस्य वसुधा शुक्ला लोहिता क्षत्रियस्य तु।
पीता वैश्यस्य विज्ञेया कृष्णा शूद्रस्य कीर्तिता ॥६॥

निर्जन में, नदीतीर में, तीर्थ स्थान, गृह, उद्यान के कुसुम से भरे स्थान में, विचित्र प्रासाद समूह में, आकाश के नीचे अथवा जहाँ मन की प्रेरणा हो, पूर्व आवेशन में (सूर्यादि की परिधि स्थान में) तथा दोषवर्जित भूप्रदेश में मण्डल अंकित करना चाहिये। ब्राह्मण की भूमि शुभ्र, क्षत्रिय की रक्तवर्ण, वैश्य की पीतवर्ण तथा शूद्र की कृष्णवर्ण कही गयी है।।४-६।।

चतुर्णामपि वर्णानां यथावदनुपूर्वशः।
ततः शब्दं निरीक्ष्येह माङ्गल्यांश्चापि वाचकान् ॥७॥
प्रशस्तं वचनं ग्राह्यमप्रशस्तं विवर्जयेत्।
आज्यमध्यवलिप्तेन हन्याज्जतुफलेन तु ॥८॥

यथावत् आनुपूर्विक चार वर्ण की शब्दपरीक्षा करके माङ्गल्यवाचक प्रशस्त वचन ग्रहणीय है तथा अप्रशस्त वर्जनीय है। घृत तथा मधु से लिप्त अतुफल (जिसके फल से दलबद्ध पतङ्गसमूह आविर्भूत होते हैं, ऐसे गूलर के फल) से आहुति प्रदान करनी चाहिये।।७-८।।

ततः सूत्रान्यसेन् मन्त्री यथावदनुपूर्वशः।
सिन्दूरिकानसुचनग्रन्थिस्त्येन विवर्जितान् ॥९॥
कार्पासिकान् बल्कलयान्क्षौमान् कौशिकपट्टकान्।
यथाहस्तविभागेन पातयन्मन्त्रवत्समम् ॥१०॥
ऐन्द्रे च प्रथमं सूत्रं हृदयेनाभिमन्त्रितम्।
ततश्चाष्टदले पद्मेमध्ये तस्य नियोजयेत् ॥११॥

तदनन्तर मन्त्री यथावत् आनुपूर्विक सूत्र का विन्यास करे। सिन्दूर वर्ण के तथा सिले वस्त्र का वर्जन करके कपास का वस्त्र, वल्कलवस्त्र, सिल्क या कौशिकवस्त्र—इनमें से किसी एक का एक हाथ वस्त्र मन्त्रज्ञ साधक पूर्व की ओर प्रथम सूत्र को हृदय द्वारा अभिमन्त्रित करे। तदनन्तर अष्टदल पद्म से उसे युक्त करे।।९-११।।

गायत्र्या लब्धहस्तं तु चिन्तयित्वा दिवाकरम्।
याति चित्तरजाः प्राज्ञो जपेच्चैव षडक्षरम् ॥१२॥
सत्वं रजस्तमश्चेति हितं राजसलक्षणम्।
अङ्गुष्ठपर्वविपुलं रजः सर्वत्र कथ्यते ॥१३॥
अतिक्षीणं तथा स्थूलं कृशं बिन्दुविवर्जितम्।
आलिखेन्मण्डलं दिव्यं चतुर्द्वारं सुशोभनम् ॥१४॥

गायत्री द्वारा अपने हस्त में प्राप्त दिव्य हाथ का चिन्तन करे। चित्त का मालिन्य हट जाने पर प्राज्ञ व्यक्ति (षडक्षर) सूर्यमन्त्र का जप करे। सत्व-रज तथा तम हैं—राजस चिह्न। अंगुष्ठपर्व के बराबर स्थूल रजःगुण सर्वत्र रहता है। अति तीक्ष्ण, स्थूल, कृशबिन्दु, चतुर्द्वारयुक्त सुशोभन दिव्य मण्डल अंकित करे।।१२-१४।।

आयुधानि तथा चाष्टौ दिशासु विदिशासु च।
पूर्वपत्रे तथोङ्कारे पश्चिमे तु खकारकम् ॥१५॥
खोकारं दक्षिणे पत्रे ल्काकारं चोत्तरे तथा।
यकारः वायुभागे तु स्वाकारं वह्निसंस्थितम् ॥१६॥
हकारं नैर्ऋते योज्यं क्षेमेशान्यां तथा दिशि।
कर्णिकायां तथा देवं महातेजो द्विरक्षरम् ॥१७॥

इस प्रकार दिक् तथा विदिक् में आठ आयुध अंकित करे। पूर्वपत्र में ओंकार, पश्चिम में 'ख'कार, दक्षिण में 'खो'कार तथा उत्तर में 'ल्का'कार अंकित करे। इसी प्रकार

वायुकोण में (पश्चिम उत्तर कोण में) 'य'कार, अग्निकोण में (पूर्व-पश्चिम कोण में) 'स्वा', नैर्ऋत्य-ईशान कोण में 'हा' अंकित करे (अर्थात् ॐ स्वखोल्काय स्वाहा)। कर्णिका में महातेजा दो अक्षर विशिष्ट देवता का (?) अङ्कन करे।।१५-१७।।

तस्य वै हृद्गतां देवीं विन्यसेच्छ्वेतसंस्थिताम्।
अष्टौ वर्ज्या निशा देव्या दिशासु विदिशासु च ॥१८॥
पूर्णप्राकारमध्ये कवर्गः पञ्चभूतमहानि च।
दक्षिणे षकारवर्गः पञ्चबुद्धीन्द्रियाणि च ॥१९॥
पश्चिमे टकारवर्गः पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च।
उत्तरे तकारवर्गः पञ्चतन्मात्राणि च।
ऐशान्यां पकारवर्गमव्यक्तं च तथाहितम् ॥२०॥

उसके हृदय श्वेत संस्थित देवी का अङ्कन करे (यहाँ श्वेत संस्थित का तात्पर्य श्वेत पद्मसंस्थित प्रतीत होता है) तथा निशा देवी को छोड़कर दिक्-विदिक् में आठ जन को स्थापित करे। पूर्व प्राकार के मध्य में 'क'वर्ग तथा पञ्चभूत महत्तत्त्व, दक्षिण में 'ष'कार वर्ग तथा पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पश्चिम में 'ट'कार वर्ग तथा पञ्च कर्मेन्द्रियगण, उत्तर में 'त'कार वर्ग एवं पञ्चतन्मात्रा एवं ईशानकोण में अव्यक्त 'प'कार वर्ग का विन्यास करे।।१८-२०।।

आग्नेय्यां चकारवर्गं बुद्धिं च। नैर्ऋत्यां वकारवर्गमहं च। वायव्यां कोऽहं कोऽहं क्षौंमनश्चेति। द्वितीये प्राकारे—सुरेन्द्रं पूर्वे आग्नेय्यां अग्निम्। याम्ये यमम्। नैर्ऋत्ये निर्ऋत्याधिपम्। पश्चिमे वरुणम्। वायव्ये वायुम्। सौम्ये सोमम्। ऐशान्या-मीशानम्। मुद्रालक्षणं घटेत इति। तृतीये प्राकारे—चाशनि तथा शक्तिदण्डं खड्गं चक्रं गदां परशुं च पुनर्लिखेत्। तथापरं चैव महामुद्रा दातव्या दिशि विदिशि। पूर्वादारभ्य लोकपालानावाहयेत्। चतुर्थे त्वावरणे—व्योमपुष्पं बलिमुपहारांश्च गृह्णीतवति। ॐङ्कारादि स्वाहान्ताः। ततोऽग्निस्थापनं कृत्वा। आर्यं उष्णिक् कृतभूषणः। भूमिं उल्लिख्यालिख्य घृतदर्भमवकीर्य ब्राह्मणं दक्षिणतः स्थाप्य स्रुवपात्रं विशोध्य आज्यं प्रदक्षिणीकृत्य दक्षिणं जानुभूमौ निपात्य स्रुवमुपागृह्य अभुक्तपात्रः षड़ाहुतीर्जुहुयात्। सान्निध्यकरणं सम्भवति एतादृशलक्षणमग्निं सञ्चिन्त्य छागारूढं प्रादेशमात्रं सप्तार्चिः कुण्डाक्षधरं पिङ्गलश्मश्रुलोचनम् स्वमन्त्रेणाह्वयेत्। ततः शिष्यस्य गर्भाधानाद्याः पञ्चपञ्चाहुतीर्जुहुयात्। ततो दण्डं मेखलां स्थापयेत्। पूर्वतोमुखं प्रवेशयेत्सूर्यभक्तान् हृदये नाभिमन्त्रितान्।

अग्निकोण में 'च'कार वर्ग एवं बुद्धि, नैर्ऋत्य में 'व'कार वर्ग तथा अहंतत्त्व, वायुकोण में कोहं कोहं क्षौं तथा मन। द्वितीय प्राकार में—पूर्व में इन्द्र, अग्निकोण में अग्नि, दक्षिण में यम, नैर्ऋत्य में नैर्ऋत्य के अधिपति, पश्चिम में वरुण, वायुकोण में वायु, उत्तर में सोम, ईशानकोण में ईशान इस प्रकार से मुद्रालक्षण होगा।

तृतीय प्राकार में—वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, शङ्ख, चक्र, गदा तथा परशु बनाये। ऐसे ही ऊपर पुर में पूर्व की ओर महामुद्रा लिखे। पूर्व से आवाहन प्रारम्भ करके लोकपालगण का आवाहन करे। चतुर्थ प्राकार (आवरण) में व्योमपुष्प, बलि तथा पूजोपहार ग्रहण करे। आदि में ॐकार, अन्त में स्वाहा का योग करना चाहिये। तदनन्तर अग्नि-स्थापना करे। आचार्य मस्तक पर पगड़ी पहने। भूमि रेखाङ्कित करके कुश-स्थापन करके दाहिनी ओर ब्राह्मण को बैठाये। तदनन्तर स्रुवपात्र का शोधन करके आज्य की प्रदक्षिणा करे (घृत की प्रदक्षिणा)। दाहिना जानु पृथ्वी पर रखे, स्रुव लेकर पात्र-परित्यागी न हो (अर्थात् पात्र लिये रहे)। दस आहुति प्रदान करे। तत्पश्चात् सन्निधीकरण करे। सम्भव होने पर इस प्रकार से अग्नि का चिन्तन करना चाहिये—छाग (मेष) के ऊपर आरूढ, प्रादेश मात्र, सप्त किरणयुक्त, कुण्डाक्ष धारणकारी, पिङ्गल श्मश्रु तथा नेत्रयुक्त अग्नि का ध्यान करके अपने मन्त्र से उनका आवाहन करे। तत्पश्चात् शिष्य-हेतु गर्भाधानादि पाँच-पाँच आहुति देनी चाहिये। इसके अनन्तर दण्ड एवं मेखला की स्थापना करे। तदनन्तर पूर्व की ओर हृदय के द्वारा अभिमन्त्रित सूर्यभक्तों को प्रवेश कराये।

वस्त्रबद्धमुखान् कृत्वा त्रिधा भ्राम्यन्विचक्षणः।
जानुभ्यामवनीं गत्व शिरसा ते क्षमापयेत् ॥२१॥
तत्र तत्पतेः पुण्यं तस्य तल्लयमादिशेत्।
नाम तस्य स्वरूपेण कारयेद्रविपूर्वकम् ॥२२॥
षष्ठ्या चैव महाश्वेतां हृदि ध्यात्वा दिवाकरम्।
साधनं तु निरीक्षेत ततो दीक्षित उच्यते ॥२३॥

विचक्षण व्यक्ति मुख को कपड़े से बाँधकर तीन बार घुमाकर भूमि पर जानु रखकर मस्तक द्वारा क्षमापन कराये (प्रणाम की मुद्रा में क्षमापन कराये)। तदनन्तर वहाँ उसके अधिपति के पुण्यलय का चिन्तन करे। स्वरूप में रविपूर्वक उसका नामकरण करना पड़ता है। षष्ठी में महाश्वेता तथा हृदय में दिवाकर का ध्यान करे, साधन दर्शन करे। तदनन्तर उसे दीक्षित कहा जाता है।।२१-२३।।

ततः साधकोऽग्निस्थापनं कृत्वैकैकामाहुतिं जुहुयात्। ततोऽष्टपुष्पिकां दापयेत्॥२४॥

इति श्रीसाम्बपुराणे साधनरहस्यं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

●

तदनन्तर साधक अग्नि-स्थापन करके एक-एक आहुति देकर होम करे। तत्पश्चात् अष्टपुष्पिका प्रदान करे।।२४।।

श्री साम्बपुराणोक्त साधनरहस्य नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त

●

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(पूजाविधिनिरूपणम्)

नारद उवाच

प्रथमं चिन्तयेत् पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम्।
तन्मध्ये चिन्तयेद्देवं भास्करं रश्मिविग्रहम् ॥१॥
सहस्रदिनसंस्कारं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
महातेजोमयं ध्यात्वा आदित्यं पूजयेद् बुधः ॥२॥
योऽयं हरितवर्णाभं रथे तिष्ठति वाजिनम्।
अरुणः सारथिर्यस्य रथवाहः स्वयं स्थितः ॥३॥
तमहं लोकशांत्यर्थमादित्यमाह्वयाम्यहम्।
आयाहि भगवन्भानो तव यज्ञः प्रवर्तते ॥४॥

प्रथमतः कर्णिकायुक्त अष्टपत्र-विशिष्ट पद्म का चिन्तन करे। उसमें रश्मिस्वरूप सूर्यदेव का चिन्तन करना चाहिये। सहस्र दिनसंस्कारक (असंख्य दिनों को प्रकाशित करने वाले) कोटि सूर्य प्रभातुल्य महातेजोमय आदित्य का ध्यान करके पण्डितगण उनका पूजन करते हैं। जो हरित वर्ण वाले अश्वों के रथ पर स्थित हैं, रथ के सारथी अरुण जिस रथ पर हैं, लोक की शान्ति के लिये मैं उन आदित्य का आवाहन करता हूँ। हे भगवन् भानु! आप आईये। आपका यज्ञ प्रारम्भ होता है।।१-४।।

इदमर्घ्यं च पाद्यं च प्रतिगृह्य नमो नमः।
आह्वानं सहस्रकिरणं स्वागतं स्वागतं स्वागतं ठः ठः।
ॐ धर धर अद्य ॥५॥

यह अर्घ्य तथा पाद्य ग्रहण करिये। आपको नमस्कार है, नमस्कार है। सहस्रकिरणों से युक्त आपका मैं आह्वान करता हूँ। आपका स्वागत है (मूल में लिखित मन्त्र से पाद्य अर्घ्य प्रदान करे, यथा—इदमर्घ्यञ्च पाद्यं च प्रतिगृह्य नमो नमः (यह अर्घ्य तथा पाद्य मन्त्र है)। आवाहन मन्त्र है—आह्वानं·····धर धर अद्य।।५।।

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वभूतानां प्रतिगृह्य नमो नमः ॥६॥

स्वाहा धूपः गन्ध गन्धादि ठः ठः गन्धः। ॐ दीपपञ्चलिनि ठं ठं दीपः।

वनस्पतिरसो से लेकर नमः-पर्यन्त मूल श्लोक छः से धूप तथा दीप प्रदान करे। मन्त्रार्थ है—वनस्पति के निर्यास से उत्पन्न दिव्य गन्धयुक्त उत्तम गन्ध, जो समस्त प्राणियों के आघ्राण-योग्य है, उस धूप को ग्रहण करिये। आपको नमस्कार-नमस्कार। तदनन्तर स्वाहा कहे। तत्पश्चात् 'धूपः गन्धगन्धादि स्वाहा' से गन्ध प्रदान करे और 'दीपपञ्चलिनि स्वाहा' से दीपदान करे।।६।।

ॐ एतत्सुमनसं दिव्यं गन्धादिः गन्धवत्तमम्।
आघ्रेयः सर्वभूतानां प्रतिगृह्य नमो नमः ठः ठः ॥७॥ इति पुष्पम्

अब श्लोक ७ से पुष्पदान करे। जहाँ 'ठः ठः' लिखा है, वहाँ 'स्वाहा' कहे। मन्त्रार्थ है—इस दिव्य गन्धयुक्त गन्धश्रेष्ठ को, समस्त प्राणियों के आघ्रेय पुष्प को ग्रहण करिये। आपको नमस्कार-नमस्कार।।७।।

ॐ ब्रह्मणा ग्रथितं पूर्वं पवित्रमिदमुत्तमम्।
यज्ञोपवीतं महातेज गृह्णीष्व नमोऽस्तु ते ॥८॥

मूल श्लोक ८ द्वारा यज्ञोपवीत दान करे। मन्त्रार्थ है—पहले ब्रह्मा द्वारा ग्रथित इस उत्तम महातेजयुक्त यज्ञोपवीत को ग्रहण करिये। हे हंस! आपको नमस्कार है।।८।।

सर्वौषधिसमृद्धस्तु भक्ष्योऽयं परमेश्वर।
अमृतं गृह्यतां देव अमृतोऽयं तवाशनः ॥९॥ इति अन्नम्।

श्लोक ९ द्वारा अन्नदान करना चाहिये। मन्त्रार्थ है—हे परमेश्वर! समस्त औषधियों (शस्य तथा वृक्ष-लतादि से उत्पन्न) के सहित यह खाद्य, यह अमृत आप ग्रहण करिये। हे देव! यह अमृत आपके लिये भक्षणीय है।।९।।

रत्नोज्ज्वलमिदं पुण्यं मुकुटं भूषणोत्तमम्।
मुकुटं गृह्यतां देव देवदेव नमो नमः ॥१०॥ इति मुकुटम्।

श्लोक १० द्वारा मुकुट-दान करे। मन्त्रार्थ है—रत्न के समान उज्ज्वल पुण्य मुकुट उत्तम भूषण है। हे देव! इसे आप ग्रहण करिये। हे देवदेव! आपको नमस्कार है, नमस्कार है।।१०।।

ॐ भास्कराय त्विदं वस्त्रं सर्ववस्त्रोत्तमं वरम्।
कटिभूषणमिदं पुण्यं दिव्यं देव नमोऽस्तु ते ॥११॥

इति श्रीसाम्बपुराणे पूजाविधिनिरूपणे प्रथमं पटलं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

●

श्लोक ११ द्वारा वस्त्रदान करना चाहिये। मन्त्रार्थ है—भास्कर को इन सभी वस्त्रों में से उत्तम वस्त्र अर्पित करता हूँ। इस दिव्य पुण्य कटिभूषण को आप ग्रहण करिये। हे देव! आपको नमस्कार है, नमस्कार है।।११।।

श्रीसाम्बपुराणोक्त पूजाविधि-निरूपण नामक तिरेपनवाँ अध्याय समाप्त

●

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(अष्टपुष्पिका)

देव उवाच

संक्षेपेण तु देवेश कथयस्वाष्टपुष्पिकाम् ॥१॥

देवगण कहते हैं—हे देवेश! संक्षेप में अष्टपुष्पिका कहिये।।१।।

देव उवाच

खखोल्काय स्वाहा ठः ठः।
ॐकारं स्थापयेत्पूर्वं खकारं वह्निसंयुतम्।
खोकारं दक्षिणे भागे ल्काकारं नैर्ऋते तथा ॥२॥
यकारं पश्चिमे भागे स्वाकारं वायवे ततः।
हाकारमुत्तरे स्थाप्यं तथैशान्यां क्षकारकम् ॥३॥
ओङ्कारेणावाहनं कुर्यात्सान्निध्ये च खमुच्यते।
खोकारं स्थापने विद्याल्काकारं पुष्पकारणात् ॥४॥
स्वाकारं योजयेत् सूक्तं भोज्यं भक्ष्यं तथैव च।
हाकारं च सदा योगी चिन्तयेन्मुक्तिकारणात् ॥५॥

सूर्यदेव कहते हैं—'खखोल्काय स्वाहा स्वाहा' (यह सूर्य का मूलमन्त्र है। इसके प्रत्येक अक्षर के बीज न्यास को अष्टपुष्पिका कहते हैं।) इस मन्त्र के पहले 'ॐ' लगाना होगा, तदनन्तर वह्नियुक्त 'ख', दक्षिण में 'खो' नैर्ऋत्य में 'ल्का' कार, पश्चिम में 'य', वायु-कोण में 'स्वा'कार, उत्तर में हाकार का स्थापन करके ईशान कोण में 'क्ष'कार स्थापित करे। ॐकार द्वारा आवाहन करे। सन्निहित करण में 'ख' कहना होगा। स्थापन में 'खो'कार मन्त्र तथा पुष्पदान में 'ल्का'कार होगा। इस प्रकार भोज्य तथा भक्ष्य दान में 'स्वा' का योग होगा। योगी को मुक्ति के लिये सर्वदा 'हा'कार का चिन्तन करना चाहिये।।२-५।।

क्षकारं तु स्वयं देवमादित्यसमतेजसम्।
विन्यसेद्दक्षिणावर्तं साधको बीजसाधने ॥६॥
ततो मन्त्रान्प्रयुञ्जीत यथान्यायेन साधकः।
बीजाष्टपुष्पिका॥

इति श्रीसाम्बपुराणे अष्टपुष्पिकानाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः द्वितीयं पटलम्

●

'क्ष'कार स्वयं देवतास्वरूप है। आदित्य का तेज है। बीज-साधना हेतु साधक दक्षिणावर्त्त विन्यास करे। तदनन्तर साधक यथाविधान मन्त्रों को युक्त करे। यही है—बीजाष्टपुष्पिका।।६।।

श्री साम्बपुराणोक्त चौवनवाँ अध्याय का अष्टपुष्पिका नामक द्वितीय पटल समाप्त

●

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(मण्डलकथनम्)

यद्यत्स्वर्गापवर्गार्थं यच्च सर्वार्थसाधनम्।
संवत्सराख्यमतुलं मण्डलं कथयामि ते ॥१॥
आचार्यः संयतो धीमानर्कशास्त्रविशारदः।
क्रोधलोभपरित्यक्तो द्विजः शस्तो निरामयः ॥२॥
प्राप्ताभिषेकनिपुणः शास्त्रभक्तो निरामयः।
गुरोर्विधिसमाख्याता ईप्यन्ते परिचारकाः ॥३॥
कुलीनाः शुचयो दान्ता देवद्विजपरायणाः।
एते शिष्याः प्रशंसन्ते रविशासनतत्पराः ॥४॥

सूर्यदेव कहते हैं कि जो स्वर्ग तथा अपवर्ग का निमित्त एवं सर्वार्थ-साधक है, उस संवत्सर नामक अतुलनीय मण्डल का वर्णन तुमसे करता हूँ। इसमें संयत, धीमान्, अर्कशास्त्र-विशारद, जिन्होंने क्रोध तथा लोभ का परित्याग किया है, ऐसे अरोगी ब्राह्मण आचार्य प्रशस्त हैं। जो अभिषिक्त तथा निपुण हैं, शास्त्र के प्रति जिनकी भक्ति है, ऐसे अरोगी, गुरु के विधान में जो अवस्थित हैं, वैसे परिचारक अभीप्सित हैं। जो कुलीन (सत् कुलोत्पन्न) हैं, शुचि, जितेन्द्रिय, देवता तथा ब्राह्मण की सेवा में परायण हैं, सूर्य के शासनपालन में तत्पर हैं, ऐसे शिष्य प्रशंसनीय हैं।।१-४।।

अन्ये ये ये स्युरार्ता वा पापरोगाद्यविप्लुताः।
अप्रजा वसुहीना वा न कुर्युस्तेऽभिषेचनम् ॥५॥
सप्तम्यामुपरागे च संक्रान्तिषु गभस्तिनः।
पुण्येष्वन्येषु वाहस्सु लिखेदर्कोदिते तथा ॥६॥

जो अन्य लोग आर्त्त हैं, पाप तथा रोगादि द्वारा अभिभूत हैं, पुत्रहीन अथवा धनहीन हैं, उनका कदापि अभिषेक नहीं करना चाहिये। सप्तमी को, ग्रहणकाल में, संक्रान्ति में अथवा सूर्य के अन्य शुभ दिनों में तथा सूर्य के उदयकाल में (मण्डल का) अङ्कन करना चाहिये।।५-६।।

प्रागुद्दिष्टे भुवो भागे सुविस्तीर्णे शुभे शुचौ।
गोभिरध्युषितं कार्य्यं ब्राह्मणैश्चाभिनन्दितम् ॥७॥
चैद्यकण्टकवल्मीकश्मशानादिविवर्जितम्।
खखोल्कहृदयेनार्घ्यं दत्त्वा चैतद्विशोधयेत् ॥८॥

दन्दशूकाखुकेशास्थिकाष्ठभस्मतुषादिकम् ।
खखोल्कं च गुरुं चैव प्रणम्य शिरसाः ततः ॥९॥
भूम्यादि भ्रामयेच्छिष्यः स्वपेत्संयतमानसः ।

पूर्वनिर्दिष्ट सुविस्तीर्ण शुभ्र, शुचि भूमिभाग गोगण (गौओं) का आवास स्थान बनाये तथा वह होगा—ब्राह्मणों से अभिनन्दित। चैत्य (श्मशान का वृक्ष अथवा बौद्ध मन्दिर), कण्टक, दीमक की बांवी तथा श्मशानादि से वर्जित यह स्थान होता है। खखोल्क हृदय द्वारा अर्घ्य देकर विच्छू, सर्पादि, चूहों के वासस्थान का, केश, अस्थि, काठ की राखी तथा तुष आदि से स्थान का शोधन करे। सूर्य को तथा गुरु को शिर नत करके प्रणाम करना चाहिये। शिष्य ऐसा करके भूमि प्रभृति पर भ्रमण करे तथा संयत होकर शयन करे।।७-९।।

प्रासादं द्विरदादीनां काननस्य द्रुमस्य च ॥१०॥
आरोहणं प्रशस्तं स्यात् स्वप्ने सिंहासनस्य वा ।
वस्त्रभूषणदध्यन्ननारीक्षेत्रध्वजस्रजम् ॥११॥
लोभो प्रस्तरणं वैरिमारणं रुधिरस्रवम् ।
मांसाशनं सुरास्वादो रुधिरस्वादुकर्त्तनम् ॥१२॥
स्वप्न एवंविधो दृष्टः साधयेदभिवाञ्छितम् ।

शयन में प्रासाद, हाथी-प्रभृति, जंगल, वृक्ष अथवा सिंहासन पर आरोहण दर्शन करना प्रशस्त है। ऐसे ही वस्त्र, भूषण, दधि, अन्न, नारी, खेत, ध्वजा, माला, पुष्पादि-गणित शय्या, शत्रुमारण, रक्तक्षरण, मांसभक्षण, मद्यपान, रक्तवर्ण मणिविशेष का कर्तन—ऐसे स्वप्न अभीष्टप्रद होते हैं।।१०-१२।।

पुनः कुर्वीत संस्कारं चन्दनागुरुपाणिना ॥१३॥
तत्स्थानं शोभनं कार्य्यं नानाध्वजविभूषितम् ।
किङ्किणीनादमुखरं प्रचलच्चारुचामरम् ॥१४॥

पुनः चन्दन, अगुरु-मिश्रित जल द्वारा संस्कार करे। नाना ध्वजाओं से स्थान को शोभित करना उचित है। वह स्थान किङ्किणी के शब्द से मुखर तथा सुन्दर चामरयुक्त होना चाहिये।।१३-१४।।

पद्मपत्रवनोपेतं कदलीखण्डमण्डितम् ।
शिखिपिच्छोल्लसच्छत्रं वितानकविभूषितम् ॥१५॥
नानारत्नसमाकीर्णं लसत्स्रग्दामतोरणम् ।
त्रिवृतं ग्रन्थिरहितं क्षौमं कार्पासमाविकम् ॥१६॥
सूत्रं प्रशस्यते तत्र खखोल्कपुरतस्ततः ।
आशापूर्वासमस्या तु सावित्र्या शासते रविः ॥१७॥

पद्मपत्र के वनयुक्त, केला के वृक्षों से शोभित हो, छत्र में मयूर का पंख लगा हो तथा चंदोवा द्वारा विभूषित हो। वह नानाविध रत्नों से समाकीर्ण हो, मालाओं के तोरण से शोभित किया गया हो। ग्रन्थिरहित त्रिवृत, क्षौम, कपास तथा रोयें से बने सूत्र से खखोल्क (सूर्य) के सामने (सजाना) प्रशस्त है। पूर्व की ओर सावित्री के साथ रवि शासन करते हैं।।१५-१७।।

ध्रुवास्पदास्तु सौम्या ये स्यातां पश्चिमदक्षिणे।
तत्र क्षोणीं प्रमाणेन अतुलात्प्रभृतिक्रमः ॥१८॥
कर्णिकां सूत्रयेन्मध्ये कमलस्य रवेः शुभाम्।
केसरं कर्णिकातुल्यं तस्माच्च द्विगुणं दलम् ॥१९॥

ध्रुवास्पद सौम्य का स्थान पश्चिम-दक्षिण में है। वहाँ क्षोणी प्रमाण से अतुल से क्रम जाने (अर्थात् अतुल से क्रम प्रारम्भ करे)। रवि के कमल के मध्य में शुभ कर्णिका चिह्नित करना होगा। केशर है कर्णिका के तुल्य। उसका दूना होगा दल।।१८-१९।।

मण्डलं वृत्तपत्राग्रं तच्छिष्टाब्जपुरःस्थितम्।
षड्विंशतिबीजपत्रं चतुर्विंशतिकेसरम् ॥२०॥
कर्षितं च सिताम्भोजं चतुःशृङ्गं शिखोज्ज्वलम्।
ततोऽपि बाह्यमपरं चतुरस्रं तु सूत्रयेत् ॥२१॥

पद्म के पुरस्थित वृत्तपत्राग्र मण्डल होगा। २६ बीजपत्र तथा २४ केशर रहेंगे। उज्ज्वल शिखायुक्त चार शृङ्गविशिष्ट श्वेत कमल अंकित करे। उसके बाह्य की ओर अन्य चतुरस्र बनाये।।२०-२१।।

चतुर्ग्रीवं विदिक्कोणं रथस्यावयवं शुभम्।
पुरावरणमध्ये तु अरुणं कन्दरावृतम् ॥२२॥
तत्पर्यन्तं विनिष्क्रान्ते द्वे द्वे रेखे तदर्द्धिके।
पुनस्तिर्यग्गतेऽग्रे तु स्वनिष्क्रान्तप्रमाणतः ॥२३॥

चार ग्रीवायुक्त, विदिक् कोणयुक्त रथ के अवयव शुभ होते हैं। पूर्व आवरण में कन्दरावृत स्थान अरुण का है। वहाँ तक विनिष्क्रान्त होकर दो-दो रेखा प्राप्त करना चाहिये। उसका आधा अब तिर्यक् भाव से स्वनिष्क्रान्त प्रमाण होगा।।२२-२३।।

पुनस्तावच्च निष्क्रम्य विलग्नमुखयेत्तु ते।
पद्मगर्भाद्विनिष्क्रांतां वारुण्यां मकराननाम् ॥२४॥
यष्टिं पद्मायतां कुर्याद्रथस्य कर्णिकामिताम्।
यष्ट्यग्रे सप्तसंलग्नान् वाजिनः पार्श्वयोर्द्वयोः ॥२५॥

अब निष्क्रमण करके उभय दिक् विलग्न होगा। पद्मगर्भ से विनिष्क्रान्त पश्चिम दिशा की ओर पद्मपत्र के समान विस्तृत यष्टि रथ की कर्णिका के समान बनवाये। यह होगा यष्टि के आगे सात संलग्न अश्व के दोनों ओर।।२४-२५।।

तदधस्तावती यष्टेर्मूलादूर्ध्वस्मृतोऽरुणाः ।
क्षोणी च पीठमित्युक्ता तथान्तः शेषपन्नगाः ॥२६॥
कर्णिका तेजसः पिण्डो भूताद्या बीजसंज्ञिता ।
खपरं कर्णिका व्योम वारं पत्रं सकेसरम् ॥२७॥
पत्राग्रं मण्डलं हस्तिरन्तर्व्योमस्थितं पुरे ।
वाह्याकाशं च तं विद्धि यष्टिधर्मार्थसंज्ञितम् ॥२८॥

यष्टि के नीचे उसी प्रकार मूल के ऊर्ध्व में अरुण का स्मरण करना चाहिये। पृथ्वी को पीठ कहते हैं। उसमें शेषनागगण की स्थिति है। तेज के पिण्डद्वय को कर्णिका, भूतादि बीजसंज्ञक, खपर, कर्णिका, व्योम तथा वारसमूह को केशरयुक्त पत्र कहते हैं। पत्र के अग्रभाग में मण्डल है। पुर के मध्य में व्योमस्थित हस्ति रहते हैं। उसे बाह्याकाश जानो, जो यष्टिधर्मार्थ नामक है।।२६-२८।।

रथः संवत्सरो ज्ञेयः पितरस्त्वृतवः स्मृताः ।
नेत्रं पत्रस्य मूले वै दोषाच्छन्दांसि शङ्करः ॥२९॥
सुषुम्नाद्यास्तु या नाड्यः सहस्रं रविविग्रहे ।
अत ऊर्ध्वं विदिक्षु स्यात् पीतं तस्य शतं शतम् ॥३०॥
योजनायतविस्तीर्णमुच्छ्रितं तत्प्रमाणतः ।
अरुणो घृणयः प्रोक्ता बाह्यछन्दांसि वाजिनः ॥३१॥
पञ्चर्तुर्वासुकिः प्रोक्तश्चक्रेशोऽस्य भुवस्त्रयः ।
एवं सर्वमयं प्रोक्तं रथश्रेष्ठं विभावसोः ॥३२॥

रथ को संवत्सर जानना चाहिये। ऋतुसमूह को पितृगण कहा है। पत्र के मूल में नेत्ररूप रात्रि तथा शम्भुरूपी हैं छन्द। सूर्य शरीर में सुषुम्नादि हजार नाड़ियाँ हैं, इसलिये ऊर्ध्व में विदिक् में १००-१०० पीतवर्ण रहते हैं। वह योजनायत विस्तीर्ण है। उसके प्रमाण से उच्छ्रित अरुण तथा घृणिसमूह (शिखाओं के) के अश्वों को बाह्य छन्द कहा जाता है। वासुकी को पञ्च ऋतु कहा गया है तथा इस भुवन के तीन लोक चक्रेश हैं। इस प्रकार से विभावसु के सर्वमय श्रेष्ठ रथ की बात कही गयी।।२९-३२।।

दर्भैश्च कुसुमैर्वापि लिखेदेतत् समाहितः ।
सञ्चिन्त्य मनसा वापि पूर्वोद्दिष्टं विधानतः ॥३३॥
पूजयेत्परमं देवं खखोल्कमिति विश्रुतम् ।
नित्यमेष विधिर्ज्ञेयः परो नैमित्तिकः स्मृतः ॥३४॥

तेजोदानादिदीक्षासु भुवनस्थापितर्पणे ।
रथे चास्मिन्महायोगा बाह्यावाचारणावुभौ ॥३५॥

कुश अथवा पुष्प द्वारा समाहित होकर इन सबका अंकन करना चाहिये अथवा विधान के अनुसार पूर्वनिर्दिष्ट विषय की मन ही मन चिन्तना करके परम देवता का पूजन करना चाहिये, जो खखोल्क के नाम से विख्यात हैं। यह नित्य विधि है, अन्य को नैमित्तिक कहा गया है। तेजोदानादि दीक्षा का विषय है। भुवनस्थ आवि तर्पण में इस रथ का महायोग है। दोनों में बाह्य आचरण है। (दीक्षा तथा तर्पण दोनों में बाह्य आचार रहता है)।।३३-३५।।

रथकन्दरवीथ्यास्तु तदर्धगुणसम्मिता ।
वीथी कार्य्या प्रमाणेन द्विगुणा चापरा बहिः ॥३६॥
सा तूद्दिष्टगुणा ग्रीवा चारुणा पद्मतुल्यया ।
अलग्ना बाह्यतः कार्य्या याम्यां दिशि सदासुराः ॥३७॥
द्वारमेतद्विनिर्दिष्टं भिन्नमम्बुजवेश्मनि ।
रथस्य बाह्यवीथ्यौ द्वे तस्य दीप्तिः प्रकीर्तिता ॥३८॥
ग्रहदिग्देवताभानोस्तत्रत्या गुणकन्दरा ।
द्वारपश्चिमतो मोक्षं येन शिष्यान् प्रवेशयेत् ॥३९॥

रथ, कन्दर, वीथी (चत्वर) उसके आधे गुण के समान हैं। बाहर अन्य द्विगुण प्रमाण की वीथी का अंकन करे। यह होगी पूर्वनिर्दिष्ट गुणसम्पन्न पद्मतुल्य चारु ग्रीवा। बाहर विच्छिन्न होगा। दक्षिण दिक् में सर्वदा असुरगण रहेंगे। यह द्वार का वर्णन निश्चित हुआ। इसके अतिरिक्त पद्मगृह में रथ की दो बाहरी वीथी होगी। उसे रथ की दीप्ति कहते हैं। सूर्य के ग्रह दिक् देवगण वहाँ के गुणकन्दर हैं। द्वार के पश्चिम दिक् की ओर मोक्ष है। वहाँ से शिष्यों को प्रवेश कराये।।३६-३९।।

एवं निखिल उद्दिष्टः सूत्रपातविधिक्रमः ।
अनेन सम्यग् ज्ञानेन प्राप्नोति परमां गतिम् ॥४०॥
आद्यक्षरेण येन स्याद् ये च लेख्याः सविग्रहाः ।
यादृश्यश्चरजः वाते विधिस्तत्कथयाम्यहम् ॥४१॥
मणिमुक्ताप्रवालोत्थैर्व्रीहिधातुसमुद्भवैः ।
चूर्णैरग्नीन्द्रमरुद्वर्णैरथ वा चानुपूर्वतः ॥४२॥

इस प्रकार से सभी सूत्रपात का विधिक्रम कह दिया था। इसके सम्यक् ज्ञान से परम गति मिलती है। जिस प्रकार से आद्य अक्षर द्वारा उसे विग्रह के साथ अंकित करना होगा तथा रज:पात की जो विधि है, मैं उसे कहता हूँ। मणि-मुक्ता तथा प्रवालोत्थित व्रीहि एवं धातु-समुद्भव चूर्ण से अग्नि, इन्द्र तथा मरुद्वर्ण का रथ आनुपूर्विक होता है।।४०-४२।।

असंसक्तमिदं कुर्यादस्थूलामकृशां तथा ।
अविक्षीणां रजोरेखां देशिकाङ्गुष्ठयोजिताम् ॥४३॥
न च मासप्रमाणं तु रेखामानवशाद् भवेत् ।
वलिता चापरा मृष्या दीना शुक्ला ततः क्रमात् ॥४४॥
पद्मगर्भस्य नवमो योगः स परिकीर्तितः ।
तस्याधिनवमे याम्यां तयोर्मध्ये तु तत्स्मृतः ॥४५॥

यह परस्पर मिलित नहीं होगा। इसी प्रकार स्थूल एवं कृश नहीं होगा। रजोरेखा होगी गुरु के अंगुष्ठ में योजित अक्षीण। मास इसका प्रमाण नहीं होगा। रेखा ही मान-प्रमाण होगी। क्रम से कहने पर मृष्य, दीन, शुक्लवर्ण के पद्मगर्भ में नवम योग के रूप में कीर्तित होता है। उसके भी नवम दक्षिण दिशा में उन दो के मध्य में वह स्मृत है।।४३-४५।।

लिखेद् भूतादितः पद्मं भौतिके पद्मसप्रभम् ।
उदितार्कसमानं तु नैष्ठिके कर्मणि स्थितम् ॥४६॥
पीतां तु कर्णिकां तत्र किञ्झल्कं हरितं लिखेत् ।
केसराण्यरुणान्यन्तः शुक्लान्यादन्तपत्रयोः ॥४७॥
पीतामर्कपुरं शोणमस्त्रं पद्माग्रसन्धिषु ।
प्रतिदिग्देवतास्त्राणि स्वीकृत्य हरितान् हयान् ॥४८॥

भूतादि से पद्म का अंकन करे। भौतिक में पद्म तुल्य होगा (कमल के समान)। नैष्ठिक कर्म में उदित सूर्य के समान (नैष्ठिक कर्म में पद्म के समान अंकन न होकर उदित सूर्य जैसा अंकन करना चाहिये, उसमें पद्म के समान अंकन नहीं होगा)। कर्णिका जहाँ होगी, वहाँ पीतवर्ण तथा किंजल्क हरितवर्ण का होगा। केशरसमूह में अरुण वर्ण होगा तथा अन्त पत्र (दोनों) का वर्ण शुक्ल होगा। सूर्यपुरी का वर्ण होगा पीत। पद्म की अग्रसन्धि में रक्त वर्ण का अस्त्र होगा। प्रत्येक दिग् देवता का अस्त्र स्वीकार करना होगा। उनके अस्त्र होंगे—हरितवर्ण।।४६-४८।।

संध्यारुणसमं व्योमकन्दरां कनकप्रभाम् ।
सितपीतारुणैर्वर्णैर्वर्णयष्टिर्लेखसु नाननः ॥४९॥

सन्ध्याकालीन अरुण के समान वर्ण का आकाश बनाये। कन्दर स्वर्णतुल्य होगे। श्वेत, पीत तथा अरुण वर्ण के द्वारा यष्टि रञ्जित करे, किन्तु मुख न करे।।४९।।

चतुर्भिर्वर्णकैर्लेख्यं सर्वमावरणादिकम् ।
चतुर्भिर्वर्णकैरेव चारालान् पूरयेत्तथा ॥५०॥
उक्ता देवादयो येषु पूर्वस्थानेषु तत्र वै ।
स्वनाभ्याभ्यन्तरे तेषां लिखितं खेलनं भवेत् ॥५१॥

एवं मण्डलमालेख्य भूयः स्नात्वा समाहितः ।
शस्यते हरितां हृद्यां सर्वेषु रविकर्मसु ॥५२॥

चार वर्णों से आवरणादि का अंकन करे। ऐसे ही चार वर्ण से अन्तराल वाले स्थानों को भी अंकित करे। जिन पूर्व स्थानों में देवादि की स्थिति कही गयी है, नाभिदेश के अभ्यन्तर में उनका अंकन करना चाहिये। इस प्रकार मण्डल का अंकन करके समाहित होकर सूर्य के समस्त कार्यों में मन लगाये।।५०-५२।।

अग्निगर्भस्य चान्तेषु प्रागुदक्कुलकान् कुशान् ।
न्यसेत्समंतात् सर्वेषु ह्याग्निकार्ये च नैत्यिके ॥५३॥
विशेषं परमं किञ्चित्पूजाग्निक्रिययोर्मया ।
कथ्यमानं सुराः सर्वे निबोधत महाफलम् ॥५४॥
नदीद्विकूलगोशृङ्गमृत्स्नागोशीर्षकाननम् ।
शुक्लं सभस्मदूर्वान्तिकर्णीसर्षपरोचनाः ॥५५॥
क्रोड़क्रान्तां निशां मुस्तां सर्वास्वेष्टासु दिक्ष्वपि ।
चन्दनोदकपूर्वेषु चन्दनस्थालिकेषु च ॥५६॥
शम्याभिपल्लवाक्षेपचिराजितमुखेषु च ।
कन्दराबद्धवस्त्रेषु कलशेषु विनिक्षिपेत् ॥५७॥

नित्य अग्नि कार्य में तथा अग्निगर्भ के चतुर्दिक उदककुलक कुश का विन्यास करे। पूजा तथा अग्निकार्य के सम्बन्ध में कुछ विशेष मै कहता हूँ। हे देवगण! तुम उसे सुनो। वह महान् फलद है। नदी के दोनों तट, गाय का सींग, मृत्तिका, गाय का मस्तक, वन पर शुक्त भस्म के साथ दूर्वा, अंतिकर्णी, सरसों, रोचना (गोरोचन), क्रोड़क्रान्त निशा, मुस्ता को सभी आठ दिशाओं में चन्दन मिश्रित जल के साथ चन्दनस्थ असिक, शमि के अभि-पल्लवाक्षेप से तथा चिराजित मुख में कन्दर के द्वारा वस्त्रबद्ध कलशों को निक्षेप करना होगा (इन सबका कोई अर्थ स्पष्ट नहीं है। अतः मात्र शब्दार्थ दिया गया है)।।५३-५७।।

संवत्सरस्य तस्यापि दिश्यग्नेय्यां ततः शुभम् ।
अग्निकुण्डं विदिक्कोणे तदेवपुरसम्मितम् ॥५८॥
आर्यादितीर्थसहितं निखातं द्वादशाङ्गुलम् ।
विस्तृताष्टाङ्गुलं तीर्थं कुर्यात्प्राक् प्लवमुत्तमम् ॥५९॥
आर्यादिकतीर्थम् ।

उस संवत्सर के आग्नेयी दिशा में (पूर्व तथा दक्षिण का मध्यवर्त्ती कोण) शुभ अग्नि-कुण्ड, विदिक् कोण में पद्मपुर के समान आर्यादि तीर्थ के साथ १२ अंगुल निखात करे। विस्तृत आठ अंगुल नीचे प्रवाह में उत्तम तीर्थ करे। यह है आर्यादिक तीर्थ।।५८-५९।।

कुण्डादष्टाङ्गुलं न्यस्य याम्यदर्भसमेनकम्।
विज्ञः सप्ताङ्गुलैश्चैव पारियात्रमथोत्तरे ॥६०॥
यैः सहैव खखोल्कस्य पूजा निगदिता शुभा।
वह्निरूपः स तैः सार्द्धं ध्येयः स्वहृदयेन तु ॥६१॥
ब्रह्मतो वरुणाभ्यासे प्राङ्मुखे स्रुक्स्रुवौ न्यसेत्।
इष्टाङ्गानि तु सर्वाणि गुरोर्नैर्ऋतभागतः ॥६२॥
अक्षीणाग्राः कुशा ह्रस्वा लूनाश्चैवोपमूलतः।
शस्यं ते हरिता हृद्याः सर्वेषु रविकर्मसु ॥६३॥

विज्ञ व्यक्ति कुण्ड से आठ अंगुल दक्षिण में दर्भ (कुश) निक्षेप करे। उत्तर दिशा में सात अंगुल का पारियात्र बनाये। जिनके साथ खखोल्क की (सूर्य की) पूजा की वार्ता कही गयी हो, उनके साथ अपने हृदय में वह्निरूप सूर्य का ध्यान करना चाहिये। ब्रह्मा से लेकर वरुण के पास तक पूर्व मुख में स्रुक् तथा स्रुव को न्यस्त करे। गुरु के नैर्ऋत्य भाग में समस्त ईप्सित अंग समूह रहें। उनके अग्रभाग में छोटी कुशों को (जो क्षीण न हों) न्यस्त करना होगा। सूर्य के सभी कर्म में हरे रंग के शस्य ईप्सित हैं।।६०-६३।।

अग्निगर्भस्य चान्तेषु प्रागुदक्कुलकान् कुशान्।
न्यसेत्समन्तात् सर्वेषां ब्रह्मादीनामधस्ततः ॥६४॥
चतुर्विंशतिरङ्गुष्ठपरिमाणं स्रुवस्य तु।
तस्याप्युद्धरणाग्रस्य न तमङ्गुष्ठसम्मितम् ॥६५॥
तदर्द्धाङ्गुलं पात्रिमानं पाणिपात्रतलोदरम्।
वृत्तं तस्यापि निर्दिष्टं खातं द्व्यङ्गुलमेव च ॥६६॥
रक्तचन्दनकाष्ठैश्च खदिराश्वत्थकिंशुकैः।
अन्यैश्चैवापि याज्ञीयैः कर्तव्यं स्रुक्स्रुवादिकम् ॥६७॥

अग्निगर्भ के शेष भाग में पूर्व में उदक कुलक कुश का ब्रह्मादि के नीचे चारों ओर निःक्षेप करे। स्रुव का परिमाण होगा २४ अंगुल। उद्धरण (जिससे यज्ञ में घृत दिया जाता है) का अग्रभाग नत तथा अंगुष्ठ के समान होगा। उसके अर्द्धाङ्गुल पात्रिमाण में हस्तरूप पात्र के तल देश में जिसका उदर है उसका वृत्त निर्दिष्ट है—वहाँ दो अंगुल गहराई होगी। रक्तवर्ण चन्दन की लकड़ी से, खैर, पीपल, किंशुक अथवा अन्य यज्ञीय काष्ठ से स्रुक् तथा स्रुवा का निर्माण करना उचित है।।६४-६७।।

काष्ठैरमीभिः कर्त्तव्यं मुशलोलूखलं तथा।
चमसश्चैव तत्रापि मुशलं द्वादशाङ्गुलम् ॥६८॥
उलूखलं तु दिक्संख्यं खातं च चतुरङ्गुलम्।
चमसवर्णसंख्यातं खातं ह्यर्द्धाङ्गुलं तथा ॥६९॥

पुच्छं षडङ्गुलं तस्य विज्ञेयं परिमाणतः ।
दन्तकाष्ठन्तु शिष्यस्य ललाटेन तु सम्मितम् ॥७०॥

इन सब लकड़ियों से मूसल-उलूखल तथा चमस बनाना उचित है। मूशल होगा १२ अगुल। उलूखल होगा दस अंगुल परिमित तथा चार अंगुल गहरा होगा। चमस होगा चार अंगुल परिमित तथा आधा अंगुल गहरा। उसके पुच्छ का परिमाण होगा छः अंगुल। दन्तकाष्ठ होगा शिष्य के ललाट के तुल्य।।६८-७०।।

अर्कस्य समिधः काष्ठं द्वादशाङ्गुलमायतम् ।
अवक्रं सत्वचं चैव सार्द्रनिष्पाणिकं तथा ।
उपवीतं कुशमयं कर्त्तव्या मेखला त्रिवृत् ॥७१॥
समा शुक्ला च मौञ्जी स्याद्बर्हिजा बिल्वजा तथा ।
अविछिन्नशिखाजालः सर्प्पिः काञ्चनसन्निभम् ॥७२॥
स्निग्धः प्रदक्षिणावर्तो वह्निः सिद्धिकरः स्मृतः ।
उलूखलैः ततस्तस्मिन्क्षोदयेच्चतुरङ्गुलम् ॥७३॥

सूर्य के समिध का काष्ठ १२ अंगुल का हो। वह वक्र न हो। त्वचा से युक्त, आर्द्र तथा शाखारहित हो। कुशमय उपवीत हो तथा उसमें त्रिवृत मेखला हो। समान तथा शुक्लवर्ण की मौञ्जी होनी चाहिये, जो मयूरपुच्छ की अथवा वस्त्र की हो। अविच्छिन्न अग्नि शिखायुक्त घृत स्वर्ण के समान उज्ज्वल हो (पिघलने पर स्वर्ण के समान स्वर्णाभ लगे)। स्निग्ध प्रदक्षिणावर्त्त अग्नि (होमाग्नि जो दक्षिण (दाहिनी) ओर घूमती हो) सिद्धि-कारक कही गयी है। तदनन्तर उलूखल को चार अङ्गुल खोद दे (गहरा करे)।।७१-७३।।

खखोल्कमूलमन्त्रेण मुशलेन समाहितः ।
नवोपपानं तु शिखया पञ्चसा तण्डुलेन च ॥७४॥
मूलेन चैव शमयेत्पायसं चतुरङ्गुलम् ।
प्रवेश्याः प्रयताः शिष्या ये पूर्वमधिवासिताः ॥७५॥

सूर्य के मूलमन्त्र में मूसल द्वारा समाहित हो शिखा द्वारा नौ उपपान एवं ५-६ तण्डुलों द्वारा तथा मूल द्वारा ४ अंगुल पायस उपशम करे। तदनन्तर जो पूर्व में अधिवास करते हैं, संयत मन उन शिष्यों को प्रवेश (मण्डल में) कराये।।७४-७५।।

लिखितं स्याद्यमुद्दिश्य तं च पूर्वं निवेशयेत् ।
सोष्णीषं वाग्यतं दान्तं सितचन्दनचर्चितम् ॥७६॥
अच्छलोज्ज्वलकरं सितवस्त्रविभूषितम् ।
गवां पुच्छेन सलिलैः खखोल्काह्वयेन तु ॥७७॥
अभिषिञ्चेद् गुरुः शिष्यं ततस्तैः पापनाशनैः ।
प्रदद्याद् गुरवे शिष्यो गां वत्सेन समन्विताम् ॥७८॥

चारुरूपां समाधानां हेमस्रग्वस्त्रभूषिताम् ।
सितवस्त्रावृतखुरां द्वारेणाप्यानयेत्सदा ॥७९॥

जिनके उद्देश्य से इसे अंकित किया गया है, उन्हें पूर्व में निवेश कराये (उन शिष्यों को पूर्व में स्थित करे)। सर मौन पगड़ी पहने, मौन, उज्ज्वल हस्त, श्वेत वस्त्रधारी शिष्य को पापनाशक गौ के पुच्छ के जल द्वारा खखोल्क मन्त्र से गुरु अभिषिञ्चन करायें। शिष्य गुरु को बछड़े के साथ गौदान करे। गौ सुन्दर हो। स्वर्ण, माला तथा वस्त्र से भूषित हो, श्वेत वस्त्र द्वारा आवृत, विशिष्ट खुरों वाली गौ को द्वार पर लाये।।७६-७९।।

प्रवेश्य यष्ट्याः पुरतः स्थापयेत्सुसमाहितः ।
कायिकं वाचिकं चैव मानसं च हरेद् गुरुः ॥८०॥
पापं हि त्रिविधं तस्य खखोल्कहृदयादिभिः ।
पुष्पैरञ्जलिमापूर्य जानुभ्यां धरणीं गतः ॥८१॥
खखोल्कमिति-मन्त्रेण कमले प्रक्षिपेत्तदा ।
पद्मस्य यस्मिन्देवाग्रे प्रक्षिप्तं कुसुमं पतेत् ॥८२॥

प्रवेश करके याग करें। सामने सुसमाहित शिष्य को स्थापित करे। गुरु शिष्य के कायिक वाचिक तथा मानसिक त्रिविध पाप का हरण खखोल्क हृदयादि से करे। पुष्प के द्वारा अञ्जलि पूर्ण करे। जानुद्वय को भूमि पर टिकाकर 'खखोल्क' इत्यादि मन्त्र से कमल निक्षेप करे। ऐसे निक्षिप्त करे कि देवता के आगे पुष्प गिरें।।८०-८२।।

एतस्य कुलदेवः स्यात्सद्यः सर्वार्थसाधकः ।
उत्पाद्य मुखबन्धन्तु दृष्ट्वा हंसं समन्ततः ॥८३॥
खखोल्ककुलदेवस्य प्रणमेद्यत्नतः क्रमात् ।
पद्मरागेण हेम्ना वा युक्तं सर्वान्निवेशयेत् ॥८४॥

वे होंगे शिष्य के कुलदेवता तथा सद्यः सर्वार्थ-साधक। मुखबन्ध करके चारो ओर हंस (जीवात्मा) को देखे। यत्नपूर्वक खखोल्क कुलदेवता को प्रणाम करे। पद्मरागमणि से अथवा स्वर्ण से सबकी स्थापना करें।।८३-८४।।

ऐशानीं तु दिशं नीत्वा गुरुः शिष्यं कुशासने ।
उपवेश्य ततो दद्यान्नृपतिर्यजनानि तु ॥८५॥

गुरुदेव शिष्य को ईशानी (पूर्व तथा उत्तर के मध्यवर्ती के अधिपति) शिव की ओर ले जाकर कुशासन पर बैठाये। नृपति वहाँ बैठकर पूजोपहार प्रदान करें।।८५।।

कुशाग्रेण समादाय कलशेभ्यो गुरुर्जलम् ।
पूर्वाननं खखोल्काग्रैः शिष्यं तमभिषेचयेत् ॥८६॥

अभिषेककाले तस्याथ ब्राह्मणास्तु यथाक्रमम्।
त्रिष्वेतेषु देवेषु त्रिशिक्षां परिपाठयेत् ॥८७॥
अस्य वासोद्वयमिति उदूत्यं च निधापयेत्।
आकृष्णेनेति यजुषामष्टौ व्याहृतिकत्रयम् ॥८८॥
आदित्यव्रतसंज्ञं च शुक्लं वस्त्रं च सामसु।
सामभिश्चाभिषिञ्चेयुः सर्वे संयतमानसाः ॥८९॥

गुरुदेव कलशों से कुशा से जल लेकर सूर्य की ओर पूर्वाभिमुख शिष्य का अभिषेक कराये। तदनन्तर उसके अभिषेक काल में ब्राह्मणगण यथाक्रमेण तीन शिक्षा (तीन वेद-मन्त्र) का पाठ करें। 'अस्य वासो स्वयं, उदूत्यं च एवं आकृष्णेन' इत्यादि आठ यजुर्मन्त्रों में तीन व्याहृति लगाये। आदित्य व्रत नामक एवं साम (मन्त्र गाने वाले) गायी को शुक्ल वस्त्र प्रदान करे। सभी संयत मन से साममन्त्रों द्वारा अभिषेक करें।।८६-८९।।

ततोऽग्निनिकटं गत्वा मन्त्रेण हृदयेन तु।
कुशेन मृज्य तं शिष्यं होमं कुर्याद् गुरुः स्वयम् ॥९०॥
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा।
जातकर्म तथा नामकरणं चाशनक्रियाम् ॥९१॥
चूडोपनयनं स्नानपानीयं च क्रतूनपि।
कुशेनाङ्गपरामृज्य कुर्य्यादवसथे हृदा ॥९२॥

तदनन्तर अग्नि के पास जाकर हृदयमन्त्र से शिष्य की कुश से मार्जना करे। अब गुरुदेव स्वयं होम करें। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण तथा अन्न-प्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन में स्नान एवं पानीय (आचमन) ग्रहण करें तथा यज्ञ करें। कुश द्वारा अंगमार्जना करके हृदय गृह में अवस्थान करना उचित है।।९०-९२।।

सकुशेन तु हस्तेन च्छित्वा शिष्यशिखां गुरुः।
घृतप्लुतां दहेदग्नौ मूर्द्धादिक्षिप्तकारणात् ॥९३॥
परामृज्याथवा मूर्ध्नि तथैव जुहुयात्कुशान्।
पाकसंस्थां हविःसंस्थां होमसंस्थां च कारयेत् ॥९४॥
प्रागुक्तेनैव विधिना ततः शुद्धेन सर्पिषा।
शिष्यो होमं प्रकुर्वीत स्रुक्स्रुवाभ्यां यथाक्रमम् ॥९५॥

गुरु कुशयुक्त हाथ से शिष्य की शिखा छिन्न करे। मस्तकादि की क्षिप्तता हेतु घृत से उसे लिप्त करके अग्नि में दग्ध करे अथवा (कुश से) मस्तक की मार्जना करके उसी प्रकार कुशा की अग्नि में आहुति दे। तदनन्तर पाकसंस्था, हरिसंस्था तथा होमसंस्था करायें।।९३-९५।।

शिष्योऽभिमुखमातिष्ठेत्संस्पृशेत्तु गुरुं कुशैः ।
भुवनानि सहादित्यं योगं कुर्याद्गुरुः स्वयम् ॥९६॥

शिष्य सामने रहे और कुश से गुरुदेव का स्पर्श करे। गुरु स्वयं 'भुवनानि सहादित्यं' इत्यादि वेदमन्त्र से याग करे।।९६।।

श्रावयेन्नित्यकृत्यादौ तथा च श्रौषडित्यपि ।
यागाङ्गे वषट्कारः कार्यो लोकाभितर्पणे ॥९७॥

नित्य कृत्यादि (शिष्य को) सुनावे। वैसे ही 'श्रौषड्' को भी सुनायें तथा याग के अन्त में लौकिक तर्पण में वषट्कार का उच्चारण करें।।९७।।

ॐ कालाग्निरुद्राय ठः ठः। ॐ कालरुद्रेभ्यः ठः ठः। ॐ भस्मरुद्रेभ्यः ठः ठः। ॐ श्वेताधिपतये ठः ठः। ॐ कालरुद्रेभ्यो ठः ठः। ॐ पिङ्गलरुद्रेभ्यो ठः ठः। ॐ हिरण्यवर्णाय ठः ठः। ॐ कालाय ठः ठः। ॐ लोहिताक्षाय ठः ठः। ॐ रक्तपिङ्गलेभ्यो ठः ठः। ॐ अनन्ताय ठः ठः। ॐ पुण्डरीकाक्षाय ठः ठः। ॐ सहस्रशीर्षाय ठः ठः। ॐ महोज्ज्वलाय ठः ठः। ॐ सज्ज्वलाय ठः ठः। ॐ आशीविषाय ठः ठः। ॐ सर्वेभ्योऽनन्ताय वरुणेभ्य ठः ठः। ॐ अविचये ठः ठः। ॐ रौरवाय ठः ठः। ॐ तामिस्राय ठः ठः। ॐ तामसाय ठः ठः। ॐ अन्धतामिस्राय ठः ठः। ॐ शीताय ठः ठः। ॐ उष्णाय ठः ठः। ॐ सन्तापनाय ठः ठः। ॐ सुप्रतपनाय ठः ठः। ॐ संहताय ठः ठः। ॐ काकोलूकाय ठः ठः। ॐ पद्मलोचनाय ठः ठः। ॐ संयमनाय ठः ठः। ॐ जम्बूकाय ठः ठः। ॐ उलूकाय ठः ठः। ॐ व्याघ्राय ठः ठः। ॐ पूतिमृत्तिकाय ठः ठः। ॐ कालसूत्राय ठः ठः। ॐ सूचीमुखाय ठः ठः। ॐ लोहशङ्कवे ठः ठः। ॐ क्षुरधारोपमाय ठः ठः। ॐ विरीकाय ठः ठः। ॐ दंशकाय ठः ठः। ॐ तप्तकुम्भोपमाय ठः ठः। ॐ पूयशोणितप्रवाहाय ठः ठः। ॐ कूटपर्वताय ठः ठः। ॐ तीक्ष्णशल्याय ठः ठः। ॐ चक्रपिण्डाय ठः ठः। ॐ तार्क्ष्याय सतुण्डाय ठः ठः। ॐ मेदोसृक्पूयप्रवाहाय ठः ठः। ॐ क्रकचच्छेदनाय ठः ठः। ॐ अस्थिभञ्जनाय ठः ठः। ॐ तप्तवालुकाय ठः ठः। ॐ पङ्कलेपनाय ठः ठः। ॐ निरुच्छ्वासाय ठः ठः। ॐ यमलपर्वताय ठः ठः। स्वाहाकारमन्त्रेभ्यः। ॐ कूटशाल्मलये ठः ठः।

ऊपर मूल में अंकित 'ॐ कालाग्निरुद्राय ठः ठः' इत्यादि मन्त्रों से (ठः ठः के स्थान पर सर्वत्र स्वाहा कहें, ठः ठः नहीं कहना है) कालाग्निरुद्र, कालरुद्र, भस्मरुद्र, श्वेताधिपति तथा कालरुद्र के लिये आहुति प्रदान करे।

ऐसे ही पिङ्गल रुद्र, हिरण्यवर्ण, काल, लोहिताक्ष, रक्तपिंगलगण, अनन्त, पुण्डरीकाक्ष, सहस्रशीर्ष, महोज्ज्वल, सज्जल, आशीविष, सकल, अनन्त, वरुणगण,

अविचि, रौरव, तामिस्र, तामस, अन्धतामिस्र, शीत, उष्ण, सन्तापन, सुप्रतपन, संहत, काकोलूक, पद्मलोचन, संयमन, जम्बूक, उलूक, व्याघ्र, पूतिमृत्तिक तथा कालसूत्र के लिये आहुति प्रदान करें।

ऐसे ही सूचीमुख, लोहशंकु, क्षुरधारोपम, विरीक, दंशक, तप्तकुम्भोपम, पूयशोणित प्रवाह, कूट पर्वत, तीक्ष्ण शल्य, चक्रपिण्ड, सतुण्ड ताक्ष्र्य, मेदोऽसृक्-पूयप्रवाह, क्रक-चछेदन, अस्थिभंजन, तप्तबालूक, पङ्कलेपन, निरुच्छ्वास, यमलपर्वत तथा कूटशाल्मलि को स्वाहा लगाकर मन्त्रों से (जो मूल में अंकित है) एक-एक आहुति प्रदान करें।

ब्रह्मोवाच

दशधा भेदभिन्नस्य भेदो द्वादशधा पुनः।
तत्रास्य तव देवेश प्रसृतिर्बहुविस्तरा ॥९८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे देवेश! आपके दस प्रकार के भिन्न देह का पुनः बारह प्रकार का भेद है। आपकी बहु विस्तृत प्रसृति है।।९८।।

प्रतिविद्येषु तन्त्रेषु गतिरुक्ता परा तथा।
कृत्स्नेन तपसा सिद्धिः प्राप्यते बहु विस्तरा ॥९९॥
रहस्यं परमं देव ब्रूहि तत्त्वार्थसिद्धये।
प्रतिमन्त्रप्रयोगार्थं ध्यानसिद्धिं च तत्त्वतः ॥१००॥
अचिन्त्यं परमं गुह्यमनुक्तं यन्मयि त्वया।
मन्त्रसिद्धिर्यतो यावत्तन्त्रेऽस्मिन्प्रथमे विभो ॥१०१॥

प्रतिविद्या तन्त्रों में परा गति की बात कही गयी है। कठोर तपस्या से बहु-विस्तृत सिद्धि प्राप्त होती है। हे देव! तत्त्वार्थ-सिद्धि के लिये परम रहस्य कहिये। प्रत्येक मन्त्र प्रयोगार्थ उन-उन ध्यानसिद्धि का वर्णन करिये। जो अचिन्त्य परम गुह्य (परम गोपनीय रहस्य) आपने मुझसे कहा नहीं है, हे विभु! उस प्रथम तन्त्र से जो मन्त्रसिद्धि होती है, वह बतलाईये।।९९-१०१।।

भास्कर उवाच

पृष्टः प्रोवाच तं तस्य सृष्टिं सदसदात्मिकाम्।
असतः प्रथमं जज्ञे वर्णोऽग्रः षोडशात्मकः ॥१०२॥
सप्तविंशत्तथा वर्णा जज्ञिरे क्रमशः परे।
उभयेभ्यो विनिर्मथ्य विंशद्वर्णाश्च सृष्टये ॥१०३॥
आदितो मथ्यमानेषु पञ्चविंशदयोनिजाः।
परमेष्ठ्यादयः सप्त प्राणस्थानेषु निःसृताः ॥१०४॥
वक्त्रतः पारमेष्ठ्यात्तु कारणं दक्षिणेक्षणात्।
क्रियावानेक्षणात्तस्य मन्त्रात्सदक्षिणात्सुतः ॥१०५॥

सूर्यदेव कहते हैं—तुमने मुझसे जो जिज्ञासा किया है, उस सदसदात्मक सृष्टि की बात बताता हूँ। अग्रत: से प्रथमत: १६ अग्र वर्ण की उत्पत्ति हुई थी। तदनन्तर क्रमश: २७ वर्ण उत्पन्न हो गये। दोनों को मथित करके अन्य बीस वर्णों की उत्पत्ति हुई। आदि से मथित होने पर (१६ अग्रवर्ण) अयोनिज २५ उत्पन्न हुये। परमेष्ठि-प्रभृति सात लोग पाण स्थान से निःसृत हैं। परमेष्ठि के मुख से हठात् दक्षिण चक्षु से, कारण की उत्पत्ति हुई। वामकाल से वाम चक्षु से क्रिया की उत्पत्ति, दाहिनी ओर मन्त्र से सुत की उत्पत्ति हो गयी।।१०२-१०५।।

विजसो वामतश्चास्य नासिकाप्रसवावुभौ।
प्रसूती तस्य सृष्ट्यंशौ निःसृतौ तौ यथाक्रमम् ॥१०६॥
ततस्तेषां निरोधाय सृष्टिसंहारकारणम्।
संसृत्याद्यानि पादानि प्रणवां तं सकारणम् ॥१०७॥
मूर्ध्नि चैवं तथा न्यस्य योनिशेषात्तु योजयेत् ॥१०८॥
शिवयोनिर्निर्मिता देवी हृदयाग्रे परं ततः।
कारणं दक्षिणे बाहौ स्थाप्या सर्वा क्रिया तथा ॥१०९॥

इसके वाम दिक् से विजस दोनों नासिका से उत्पन्न हैं। उससे सृष्ट-शौनि—यथाक्रम से दो लोग उपस्थित हो गये। तदनन्तर उनके निरोधार्थ सृष्टि तथा संहार का कारण (प्रकट हुआ)। संसृत्य प्रभृति पद, प्रणवान्त कारणयुक्त (?)। इस प्रकार मस्तक, वैसे ही अन्य के योनिशेष से युक्त किया गया। तदनन्तर हृदय के आगे शिवयोनि देवी परम कारण निर्मित हुआ। दक्षिण बाहु में समस्त क्रिया स्थापित हो गई।।१०६-१०९।।

भुवनाधिपतिर्यस्य बीजयोनिरथोभयोः।
लिङ्गोपतिप्रसूतिं तु न्यसेत्सृष्टिन्तु पादयोः ॥११०॥
संहारं चक्रुरूर्ध्वस्मात्स्यातां सर्वाङ्गिनीन्तथा।
भूतयोनिस्थिता नाभ्यां प्रेरिता विश्वसंज्ञिताः ॥१११॥
जठरे संस्थितो वह्निर्जगतोऽस्य प्रकाशकः।
लिङ्गस्यातिशयं वक्ष्ये दीर्घविस्तरणं तथा ॥११२॥

भुवनाधिपति जिनकी बीजयोनि तथा दोनों के लिंग के समीप प्रसूति को न्यस्त किया गया, उनके पादयुगल से सृष्टि हुई (यहाँ दोनों के लिंग के समीप अर्थात् श्लोक १०९ में वर्णित शिवयोनि देवी, जिनकी बीज योनि है तथा भुवनाधिपति जिनका लिंग है)। ऊर्ध्व से जो संहार करते हैं, वह सर्वाङ्गीण विश्व नामक प्राणि की योनिस्थिता नाभि द्वारा प्रेरित होता है। जठर संस्थित अग्नि इस जगत् का प्रकाशक है। लिंग के अतिशय एवं वीर्य विस्तार को अब कहूँगा।।११०-११२।।

षष्ठि रथ्योत्तरा ज्ञेया व्योमव्याप्य तथा स्थिताः ।
अर्चिषो देवदेवस्य व्योमव्यापीति चाक्षरः ॥११३॥
दश कोट्योऽथ लोकेभ्यो मन्त्राणाञ्जज्ञिरे प्रभो ।
तुल्यायते तु विज्ञेया शिवेन परमात्मना ॥११४॥
भुवने शान्तयः कार्य्या शिवयोनिप्रसूतिजः ।
पातालदिशि विन्यस्य वारयंति स्वशक्तितः ॥११५॥
शरीरं देवदेवस्य गृह्यमेतच्छिवात्मकम् ।
ज्ञेयं ध्येयं तथा पूज्यं योज्यं स्यात्पञ्चविंशकम् ॥११६॥

रथोत्तरा ६० जानना चाहिये, जो आकाश को व्याप्त करके स्थित है। देवदेव सूर्य की किरणें आकाशव्यापी एवं क्षयहीन हैं। लोकमंगलार्थ दस करोड़ मन्त्र उत्पन्न हुये। हे प्रभु! इन्हें परमात्मा शिव के समान जानना चाहिये। भुवनों में शिवयोनि से उत्पन्न शान्ति कार्य पाताल दिक् में विन्यस्त होकर अपनी शक्ति से उसका वरण करता है। देवदेव के इस शिवात्मक शरीर को अत्यन्त गोपनीय जानना चाहिये। वैसे ही वह ध्येय, पूज्य तथा योजनीय है। वह २५ है।।११३-११६।।

योज्यमेकरसङ्कर्म प्रोक्तं योगे मनीषिभिः ।
एतज्ज्ञात्वा सुखात्सिद्धिं सन्दिग्धा त्वन्यथा भवेत् ।
बीजार्थं वपुषो ह्येतत्प्रोक्तं तव पितामह ॥११७॥

इति श्रीसाम्बपुराणे मण्डलकथनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः तृतीयं पटलम्

●

मनीषीगण योग में एकरसात्मक कर्म का योग करने के लिये कहते हैं। यह जानकर सुख से सिद्धि मिलती है। इसमें संदिग्ध होने पर सिद्धि नहीं मिलती। हे पितामह! शरीर के बीज के लिये आपसे यह सब कहा।।११७।।

श्रीसाम्ब पुराणोक्त पचपनवें अध्याय में मण्डलकथन नामक तृतीय पटल समाप्त

●

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(ज्ञानोत्तरम्)

तत्र तत्त्वानि बीजतत्त्वं वर्णतत्त्वं योनितत्त्वं चेति ॥१॥

निष्कलं सकलं सिद्धाश्चत्वारः पदार्थाः सिद्धाः पञ्चविंशकभावाः॥२॥

अथास्य हृदयं वक्ष्ये गुह्याद्गुह्यतरं विभोः ।
ऊर्द्ध्वं च सप्तस्रोतांसि नालं द्वादशकं तथा ॥३॥
पञ्जिका कर्णिका तस्य मकरः पञ्चधा स्मृतः ।
केसरं षोडशन्तस्य पद्मद्वादशभिर्दलैः ॥४॥
सप्तशृङ्गं तथा पारं मेरुमन्दरभूषितम् ।
योनयो द्वादशाख्याताः प्रतियन्त्रं प्रतिष्ठिताः ॥५॥
एकाक्षरपरो देवो वर्णेभ्यो बीजवान्प्रभुः ।
तत्त्वनिर्म्मथनाज्ज्ञेया कला साध्यर्द्धमात्रिका ॥६॥
बीजबीजादमुं प्राहुः षोडशार्द्धं च यः क्रमात् ।
आत्मा चार्धकला तस्य हृदि स्थितस्य सप्तधा ॥७॥

तत्त्व तीन हैं—बीजतत्त्व, वर्णतत्त्व तथा योनितत्त्व। (ये त्रितत्त्व तथा) निष्कल, सकल तथा सिद्ध—ये चार पदार्थ हैं (यहाँ बीजतत्त्व, वर्णतत्त्व तथा योनितत्त्व को एक ही गिना गया है)। उनमें २५ सिद्ध भाव पदार्थ हैं। अब इनका हृदय कहूँगा, जो विभु का गुप्त से गुप्त तत्त्व है। ऊर्ध्व में सात स्रोत तथा १२ नाल हैं। उसकी पंजिका है—कर्णिका और मकर पाँच प्रकार का कहा गया है। उसके १६ केशर तथा १२ दल विशिष्ट हैं। उसके सात शृङ्ग एवं मेरु तथा मन्दर भूषित हैं। १२ योनि प्रसिद्ध है। वह प्रतियन्त्र में प्रतिष्ठित है। एकाक्षर परदेवता है। वर्णों के निमित्त बीजयुक्त प्रभु विराजित हैं। तत्त्व-निर्मथन करके ऊर्ध्वमात्रिका कला उत्पन्न हो सकी है। उसके प्रति बीज से क्रम को षोडशार्ध कहते हैं। उसके हृदयस्थ सात प्रकार की आत्मा है—अर्धकला।।१-७।।

सप्तशृङ्गकृतैश्चैव सप्त तस्य कलात्मकम् ।
तत्त्वविद् बीजमेतत्स्यान्नान्यद्बीजमतः परम् ॥८॥
आदौ पञ्चदशं यत्तु संज्ञात्मा तदयन्न तत् ।
सबिन्दुकाः प्लुता ज्ञेया विसर्गाश्च यथाक्रमम् ॥९॥
ओंकारान्ता अकाराद्या प्रथमे केसरे स्थिताः ।
ककारादिहकारान्ता द्वितीये केसरे स्थिताः ॥१०॥

सप्तशृङ्ग-कृत वह सात कलात्मक है। यह तत्त्व ज्ञान का बीज है। इसके अनन्तर (परे) कोई बीज नहीं है। प्रथम जो १५ है, वह संज्ञारूप है। बिन्दु के साथ प्लुत (दीर्घ) स्वर जानना चाहिये तथा यथाक्रम से विसर्ग जानना चाहिये। प्रथम केसर में अ से ॐ पर्यन्त अवस्थित है। द्वितीय में 'क' से 'ह' पर्यन्त स्थित है।।८-१०।।

अकारादिक्षकारान्ताः पञ्चाशद्यंत्रसंख्यया।
एतद्धृदयपद्मं स्याद्बीजयोनिकृतं प्रभो ॥११॥
ध्यात्वैतन्मुच्यते सर्वो बीजनिर्दग्धकल्मषः।
विधिना दीक्षितश्चास्मिन्मण्डले बीजयोनिजे ॥१२॥
निष्कलं सकलं चैव तथा सकलनिष्कले।
ध्यानं ज्ञेयं च योगश्च सर्वमेतस्य कीर्तितम् ॥१३॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे षट्पञ्चाशत्तमेऽध्याये तृतीयं पटलम्

●

'अ' से 'क्ष' पर्यन्त ५० यन्त्र संख्या है। हे प्रभु! बीजयोनिकृत यही है—हृदयपद्म। बीजयोनि से उत्पन्न इस मण्डल में यथाविधि दीक्षित सब व्यक्ति बीज के द्वारा पापयुक्त होते हैं तथा ध्यान के फल से मुक्त हो जाते हैं। निष्कल-सकल एवं सकल-निष्कल ध्यान तथा योग को जानना चाहिये।।११-१३।।

श्री साम्बपुराणोक्त ज्ञानोत्तर छप्पनवें अध्याय में तृतीय पटल समाप्त

●

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(बीजोत्तरम्)

तत्त्वज्ञानमहं वक्ष्ये बीजान्येतान्यतः परम्।
अनादिनिधनं ज्ञानं गुह्याद्गुह्यतरं च यत्॥१॥
आसीदिदं समग्रं च ततानेतैदजायत।
तस्माद्धर्म वशी कामो जज्ञे व्याहार संप्रति॥२॥
विवक्षितं त्वहं श्रेष्ठं विवृतं न च संवृतम्।
प्रादुरासीदवर्णोऽस्मात्तस्य संहारमिच्छतः॥३॥
स तमागाच्च जिह्वायां मध्ये प्रकृतिसम्भवः।
इवर्णोवर्णसंहारादुवर्णोऽभून्मनस्ततः॥४॥

अब तत्त्वज्ञान का वर्णन करता हूँ। तदनन्तर इन बीजों का वर्णन करूँगा। अनादि-निधन ज्ञान गुह्य से भी गुह्यतर है। यह समग्र था, उससे विस्तृत होकर उत्पन्न हुआ (अर्थात् पहले एक में ही निहित था, तदनन्तर उससे विवक्ति होकर अनेक रूप में विस्तृत हुआ), उससे धर्म वशीकामना का व्यवहार उत्पन्न होने लगा। बलवान इच्छा का मैंने प्रकाश किया; किन्तु संवृत का नहीं किया। संहार की इच्छा से यह 'अवर्ग' आविर्भूत हुआ। प्रकृति से उत्पन्न होकर उसने जिह्वा में प्रवेश किया। वर्णसंहार से 'इ' वर्ण तथा 'उ' वर्ण उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् मन की उत्पत्ति कही गयी है।।१-४।।

तदन्ते बिन्दुसम्भूतिः सर्वान्तः प्रभु शाश्वतः।
वायोर्निर्धारणात्कण्ठे हकारः सविसर्गकः॥५॥

उसके अन्त में बिन्दु की उत्पत्ति है, जो सबके अन्तर के प्रभु तथा नित्य हैं। वायु-धारणार्थ कण्ठ से विसर्ग के साथ 'ह'कार की उत्पत्ति हुई है।।५।।

अहये चोत्तरे ज्ञेयो वर्णानां सम्भवः स्वयम्।
अवर्णो परयोगे स्यादेकारस्त्वनुलोमतः॥६॥
विलोमतो यकारः स्यात्तथोकारवकारयोः।
तृतीयो योगतो ज्ञेयो व्योकारस्य तु सिद्धये॥७॥

'अ ह' को उत्तर में जानो (?)। वर्णों की उत्पत्ति अपने-आप होती है। 'अ' वर्ण परयोग से उत्पन्न है, किन्तु 'ए'कार अनुलोम क्रम में एवं विलोम 'ष'कार, 'उ'कार तथा 'व'कार उत्पन्न है। तृतीय योग से व्योकार (वि-उकार) की उत्पत्ति जाननी चाहिये।।६, ७।।

ह्रस्वदीर्घप्लुता होते न चोङ्कारसमानजाः ।
ऋकारक्वरिवल्काराः स्वरा जिह्वाग्रकारिताः ॥८॥

ये ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुतवर्ण हैं। ये ॐकार के समान उत्पन्न नहीं होते। ऋ, ॠ तथा ऌ जिह्वा के अग्रभाग से उत्पन्न हैं।।८।।

इष्टावीषत्प्रविष्टो च संहतो च हनुं यदा।
जिह्वा मध्यस्थनानाभ्यां हन्वोरन्तरदर्शनात् ॥९॥

ईषत् प्रविष्ट २ इष्ट जब हनु से बाधा प्राप्त होते हैं, तब जिह्वा के मध्यस्थ तथा नाना (?) से लेकर हनु के मध्य में दर्शन मिलता है।।९।।

ताल्वोरेकारसम्भूतिरकाराद्दग्धसिद्धये ।
आकारैकारयोरादिरीकारार्द्धं च पूर्वशः ।
तथोङ्कारपरा शेषा एतद्विस्तारलक्षणम् ।
स्पर्शाश्चाथ प्रवक्ष्यन्ते विद्यातत्त्वस्य सिद्धये ॥१०॥

तालु से 'ए'कार की उत्पत्ति होती है। यह होती है 'अ'कार की दग्ध-सिद्धि के लिये (?)। 'आ' तथा 'ऐ' के आदि तथा पूर्व से 'ई'कार अर्ध है (?)। इसी प्रकार अवशिष्ट ॐकार के पर है (पश्चात् है), यह है विस्तार का लक्षण। अब विद्या तत्त्व की सिद्धि के लिये स्पर्श वर्ण की बात कहूँगा।।१०।।

जिह्वामूले च हन्वोः स्यात्स्पर्शनं कादिके गणे।
मध्ये तालुं स्पृशेद्यच्च वेष्टयित्वा तृतीयकाः ॥११॥

जिह्वा के मूल में तथा हनुद्वय के मध्य में ककारादि वर्णों का स्पर्श होता है। तृतीय वर्ण 'ट' वर्ग में तालु का वेष्टन करके स्पर्श करता है।।११।।

मूर्द्धन्ये देवतानां च चतुर्थे शिवमूलतः ।
ओष्ठाभ्यां पञ्चमस्याथ तत्त्वस्पर्शः सबीजकः ॥१२॥

मूर्धन्य का देवताओ तथा शिवमूल से चतुर्थ वर्ग (तवर्ग) का स्पर्श होता है। ओष्ठद्वय से पञ्चम वर्ग (पवर्ग) का स्पर्श होता है। यह है—बीजों के साथ तत्त्व का स्पर्श।।१२।।

करवन्द्यपात्तस्याहेकैकावद्धवेत्ततः ।
दन्तमूल्यो लकारः स्याच्चतुर्थश्चोष्ठदन्तगः ॥१३॥
ऊष्माणश्च गतास्ता वै प्रथमा मध्यमास्तथा।
नपुंसका भवन्त्येते नासिकाश्च भवन्ति हि ॥१४॥

दाँतों के मूल से लकार तथा चतुर्थ वर्ग (तवर्ग) ओष्ठ तथा दाँतों से उत्पन्न हैं। प्रथम तथा मध्यम (?) ऊष्मवर्ण हैं। ये नपुंसक तथा नासिका से उत्पन्न होते हैं।।१३-१४।।

एते अनादिनिधनस्य सिसृक्षोश्चाव्ययं महत्।
विद्यातन्त्रविवृद्ध्यर्थमेभ्यो योनिं चकार सः ॥१५॥

ये सब अनादि निधन सृष्टिकर्त्ता के महत् अव्यय हैं। विद्यातन्त्र की वृद्धि के लिये वे इनसे सृष्टि करते हैं।।१५।।

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः—षोडशस्वराः। क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म—एते स्पर्शाः। य र ल वा अन्तःस्थाः। श ष स हा एते ऊष्माणः। क ख ग घ एते यमाः। नपुंसकाश्च तृतीयेऽध्याये एतत् सिद्धम्।

इति श्रीसाम्बपुराणे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः बीजोत्तरे चतुर्थपटलं समाप्तम्

●

मूल में लिखित अ से अः तक १६ स्वरवर्ण है। ककार से मकार-पर्यन्त स्पर्श वर्ण हैं। य र ल व अन्तःस्थ वर्ण हैं। श ष स—ऊष्म वर्ण हैं। क ख ग घ—यम वर्ण तथा नपुंसक हैं। तृतीय अध्याय में ये सिद्ध हैं।

श्री साम्बपुराणोक्त सत्तावनवें अध्याय में बीजोत्तर का चतुर्थ पटल समाप्त

●

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

(ज्ञानोत्तरे बीजस्वरप्रसवः)

स्वरावाद्यौ चतुर्थाश्च ऊष्मा च प्रथमं तथा।
चत्वारश्चोत्तरं ज्ञेयास्तृतीयाः स्पर्शसंज्ञकाः ॥१॥
द्वितीयान्तश्चतुष्कश्च उत्तमश्च तथैव तु।
चतुर्थत्रयमेव स्यात्तृतीयो द्वौ तथैव च ॥२॥
द्वितीयाद्यस्य चत्वारस्तृतीयस्यानुनासिकम्।
पञ्चमः प्रथमश्च स्यात्तया स्यादनुनासिकम् ॥३॥
चतुर्थो ह्यष्टकश्चैव योनिः सा हि सुसृष्टये।
चत्वारो स्याद्द्विवर्णाः स्युर्दीपिता बिन्दुभिस्त्रिभिः ॥४॥

आद्यस्वर दो, चतुर्थ वर्णसमूह, ऊष्म वर्णसमूह तथा प्रथम वर्ण—इन चारो को परवर्ती जानना चाहिये। तृतीय वर्ण स्पर्शसंज्ञक हैं। द्वितीयान्त चार हैं, चतुर्थ तीन हैं तथा तृतीय में दो उत्तम हैं। द्वितीय के आद्य चार तथा तृतीय अनुनासिक हैं। इसी प्रकार पञ्चम एवं प्रथम अनुनासिक हैं। चतुर्थ एवं अष्टक सुसृष्टि के योनिरूप हैं और ये चार द्विवर्ण बिन्दुसमूह के साथ दीपित होते हैं।।१-४।।

दीपिनी बीजिनी ह्येषा पावनी स्वरसन्ततिः।
नित्यमेषानुजप्तव्या परं निर्वाणमिच्छता ॥५॥
आहावहवो हवाभवे चारिणी परमशक्तिना।
तन्त्र इति स्थितोभूमिमहाभूत इतरेतरचुम्बचुम्ब-
एषा सिद्धा चत्वारिंशदक्षरा योनिः ॥६॥

इति श्रीसाम्बपुराणे अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ज्ञानोत्तरे बीजस्वरप्रसवे पञ्चमं पटलम् समाप्तम्

●

ये स्वरसमूह दीपिनी, बीजिनी तथा पावनी हैं। परनिर्वाण के इच्छुक व्यक्ति को इनका नित्य जप करना चाहिये। अहो! इस संसार में परमशक्ति के साथ विचरणशील परस्पर भिन्न महाभूतों का समूह 'तन्त्र' नामक भूमि में स्थित है। इस प्रकार सिद्ध ४० अक्षरात्मिका योनि सिद्ध होती है।।५-६।।

श्रीसाम्बपुराणोक्त ज्ञानोत्तर बीजप्रसव नामक अट्ठावनवें अध्याय का पञ्चम पटल समाप्त

●

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

(ज्ञानोत्तरे बीजस्वरप्रसवः)

पञ्चविंशतिभिर्नाम सप्तधा क्रमशस्तथा।
प्रणवादित्रिधा भिन्नं तस्मिन्नेव पदे उभे ॥१॥
प्रणवादिर्नमोऽन्तस्थः प्रसवः सप्तमस्तु सः।
एषामादिपदं यत्स्याद् द्वितीयां चैव योजयेत् ॥२॥
तथा चादिपदैस्तत्त्वं प्रतिलोमो विधीयते।
योनि मुख्यानि यानि स्युः सर्वसृष्टिप्रवृत्तये ॥३॥

इति श्रीसाम्बपुराणे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ज्ञानोत्तरे बीजस्वरप्रसवे
षष्ठं पटलं समाप्तम्

●

२५ द्वारा क्रम-क्रम से सात प्रकार के नाम हैं। आदि में प्रणव है। तीन प्रकार से भिन्न रूप उसका उदय पद है। आदि में प्रणव, अन्त में नमः शब्द सप्तम उत्पत्ति है। उसका स्तव करता है। इसमें जो आदि पद है, उसमें द्वितीय का योग करे। इस प्रकार आदि पद द्वारा प्रतिलोम में तत्त्व की उत्पत्ति होती है। समस्त सृष्टि में प्रवृत्ति के कारण ये योनिमुख्य हैं।।१-३।।

श्री साम्ब पुराणोक्त उनसठवें अध्याय में ज्ञानोत्तर बीजस्वर
प्रसव अध्याय का षष्ठ पटल समाप्त

●

षष्टितमोऽध्यायः

(सोमसूत्रम्)

ध्यातव्य एष यत्नाद्यः सेवते ह्यखिलं जगत्।
आहावहोहवाभवेचारिणि परमशक्तिरात्मातन्त्र इति स्थिते ॥१॥

जो इस वस्तु को धारण कर सकते हैं, वे समस्त जगत् की सेवा करते हैं। 'आहा अहो ह वा भवे चारिणि' परमशक्ति आत्मा है—यह तन्त्र है।

ॐ अं ॐ उं व्योमव्यापिने। अनुषङ्गेण सप्तानां यथासंख्येन संपुटः। पादांतस्थ-बीजाख्या योनयः। ॐ अं व्योमव्यापिने ॐ इं आं व्योम। ॐ आं ईं ॐ व्योमव्यापिने भूतिवितर चुम्ब चुम्ब। वर्णायाः प्रभृतिः स्यान्मयोक्ता विस्तरतः॥२॥

ऊपर मूल में लिखे 'ॐ अं' से लेकर 'भूतिवितर चुम्ब चुम्ब' मन्त्र से व्योमव्यापी परमात्मा का ध्यान करे। अनुष्वङ्ग में सात यथासंख्य सम्पुट होगा। पाद के अन्तस्थ बीजादि योनि है। 'ॐ अं व्योमव्यापिने' इत्यादि मूल में अंकित मन्त्रों का विस्तार से वर्णन करता हूँ।।२।।

कालात्मनः प्रसृतिन्ते मन्त्रराजस्य मुक्त्यार्थं वक्ष्यन्तेऽथो यथाशास्त्रविनिश्चयः।

चक्रं त्रिनाभ्यं तत् सर्वं संवत्सरमिति प्रभुः ॥३॥
द्वादशारं तु तन्मनसो प्रत्ययश्चार्द्धमासिकः।
त्रीणि षष्टिशतान्याहुरहोरात्राणि संकरः ॥४॥
कला मुहूर्ता दण्डाश्च निमिषास्तु प्रतिष्ठिताः।
तदर्थन्नातिविश्वात्माव्यञ्जयच्छब्ददेहिनाम् ॥५॥
सप्तकः पञ्चभिर्युक्तः परितो बिन्दुभिर्युतः।
पुनः षोडशभिर्नद्धा त्रिनाभीत्युच्यते बुधैः ॥६॥

कालात्मा के प्रसृति को आपके मन्त्रराज को मुक्ति के लिये यथाशास्त्र मैं कहता हूँ। चक्र-त्रिनाभि-पर्यन्त ये सभी संवत्सर हैं। ये प्रभु हैं। द्वादशार है—उनका मन। प्रत्यय है—अर्धमासिक तीन षष्टिशत अहोरात्र। कला, मुहूर्त्त, दण्ड, निमेष प्रतिष्ठित हैं। वे वर्धित होकर अतिविश्वात्मा शब्ददेहियों का प्रकाशन करते हैं। जो पाँच सप्तक से युक्त, चारो ओर बिन्दुओं के साथ मिलित, पुनः १६ के साथ बद्ध हुआ। उसे पण्डितगण त्रिनाभि कहते हैं।।३-६।।

द्वितीयं सप्तभिः प्रोक्तं परं यच्च प्रभाषते।
नाभिगर्भे स्थितं सप्तयोनिविष्टभ्यसूचिकाम् ॥७॥
त्रिंशतं नवभिः षट्कं वर्णास्ते स्वके स्थिताः।
ग्रहनक्षत्रगर्भान्ता योनिविष्टभ्यपूर्विकाम् ॥८॥
त्रिंशतं नवति त्रीणि गणना कीर्त्यतेऽथुना।
आरेषु शब्दाः पर्याप्तास्तेषु विंशत्प्रतिष्ठिताः ॥९॥
चतुर्विंशतिसंख्याका वर्द्धयंस्तेषु चार्पिताः।
भेदाः षोडशप्राप्तैषा द्विधा योनिश्च मध्यमा ॥१०॥

द्वितीय सात के साथ युक्त है। जिसे पर कहा गया, वह नाभिगर्भ में स्थित सप्त योनि को आवृत करके स्थित है। ३९६ वर्ण स्वर में स्थित है। वह ग्रह, नक्षत्र में स्थित है। वह योनि को आवृत करके स्थित है। यहाँ ३९३ की गई है और सब शब्दपर्यन्त रहते है। उनमें २० प्रतिष्ठित हैं। २४ संख्या वर्धित होकर उसमें अर्पित है। इसके १६ भेद है। इनके दो भाग में मध्यम योनि है।।७-१०।।

त्रिंशद्द्वेष्ट्याः प्रोक्ताः पञ्चानां द्विगुणा पदैः।
विद्येश्वरप्रसूत्यर्थं लक्षमध्ये भजेत् तथा ॥११॥

कारिकापरशुशक्तिरेते सप्त हृदये सिद्धाः। ॐ आं ईं ऊं व्योमव्यापिने ॐ— एते पञ्चविद्येश्वरप्रस्तावे सिद्धाः। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः एतेषां षोडशतत्त्वज्ञाने सिद्धाः। क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह आकारासि ताः स्पर्शज्ञाने सिद्धाः। त्रयस्त्रिंशत्। आहवप्रतिमध्ये आसनं बोद्धव्यम्। एषा प्रधिप्रथमा सिद्धी। ऊं ऊं ऊं ऊं द्वादशेष्वपि बोद्धव्यः केवलं वर्णभेदः। पृथगेषा भवति अतः प्रसिद्धः प्रकृतकारणात्।

इति श्रीसाम्बपुराणे षष्टितमेऽध्याये ज्ञानोत्तरे सोमसूत्रे सप्तमं पटलम्

●

जो ३० तथा १२ कहा गया है, पञ्च भाग के द्विगुण पद द्वारा विद्येश्वर की उन्नति के लिये वह लक्ष में भजनीय है। कारिका पशु शक्ति है। यह सब सप्त हृदय में सिद्ध है। 'ॐ आं ईं ऊं व्योमव्यापिने ॐ' इससे पञ्च विद्येश्वर प्रस्ताव सिद्ध होता है। 'अ' से 'अः' पर्यन्त १६ स्वर तत्त्वज्ञान में सिद्ध है। मूल में लिखित 'क' से लेकर 'ह' पर्यन्त आकार स्पर्श स्थान में सिद्ध हैं। ३३ आहवप्रति में आसन है। इससे प्रधिप्रथमा सिद्ध है। 'ऊं ऊं ऊं ऊं' इन चार को द्वादश में जानना चाहिये। यह केवल वर्णभेद है। यह पृथक् होता है, इसीलिये प्रकृत कारण में प्रसिद्ध है।।११।।

श्री साम्बपुराणोक्त साठवें अध्याय का ज्ञानोत्तर सोमसूत्र नामक सप्तम पटल समाप्त

●

एकषष्टितमोऽध्यायः

(शरीरसाधनम्)

त्रिनाभ्यसन्तसम्भूतं बीजिनं प्रथमं पदम्।
प्रतिमध्येषु सर्वेषु स्थितं यत् परमं पदम्॥१॥
संपृक्तौ वायव्यैशान्यामोङ्कारेण प्रदीपितौ।
अकारान्तो मकारः स्याद्शि सर्वत्र निष्ठितः॥२॥
पूर्ववर्चवदीर्घान्तो नैर्ऋति दिशमाश्रितः।
इकारान्तः पकारोऽथ वायवीदिशमाश्रितः॥३॥
एकारान्तो नकारः स्यादैशान्याधिष्ठितो बहिः।
आद्यो वै दक्षिणस्तस्य द्वितीयस्तस्य दक्षिणः॥४॥

नाभि से उत्पन्न बीजधारी का प्रथम पद है। सबमें परमपद उपस्थित है। वायु तथा ईशान कोण में युक्त होकर ॐकार द्वारा प्रदीपित होता है। अकारान्त मकार सभी दिशाओं में अधीष्ठित है। पूववर्च तथा दीर्घान्त नैर्ऋत्य दिशा का आश्रय लेकर स्थित है। इकारान्त पकार वायवी दिक् का आश्रय लेकर स्थित है। 'ए'कारान्त 'न'कार ईशान दिक् के बाहर स्थित है। आद्य निश्चित रूप दक्षिण है। द्वितीय उसके दक्षिण है।।१-४।।

पुनरष्टौ स्थितां बाह्यान्मकारस्तु द्वितीयके।
ऊकारो वा तथा रेफस्तृतीयं पद्ममाश्रितः॥५॥
आकाराद्दीपितश्चैव पकारो नैर्ऋते पदे।
तस्योत्तरे पकारः स्याद्द्वितीयं पद्ममाश्रितः॥६॥

पुनः आठ बाहर हैं। मकार द्वितीय है। ऊकार अथवा रेफ तृतीय पद का आश्रय करके स्थित है। 'आ' से दीपित होकर मकार नैर्ऋत्य स्थान में अवस्थित है। उसके उत्तर में 'प'कार द्वितीय पद्म का आश्रय लेकर स्थित है।।५-६।।

बिन्दुरेवमधः पूर्वपक्षं च पूरयेच्छुभम्।
पूर्वपक्षो यथा ह्येष तद्वदेवोत्तरो भवेत्॥७॥
भेदस्त्वक्षरयोर्न स्यादक्षरे तस्य निश्चयः॥८॥

इस प्रकार निम्न बिन्दु शुभ पूर्वपक्ष का पूरण करके स्थित है। जिस प्रकार पूर्वपक्ष, उसी प्रकार उत्तर पक्ष होगा। अक्षर का (दोनों का) भेद नहीं होता, अक्षर में उसका निश्चय होता है।।७-८।।

अकचटतपयशवर्गाः। आवह अधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। ॐ उ व य अ म। आ व य इ म। त न र च य अ म। उ व य। अ म य ज र आ य। अ य अ स अ र व आ व य षोडशत्वं व्योमव्यापिने व्योम व्योमरूपाय सर्वव्यापि पूर्वपक्षः सिद्धः। प्रथमा अपि।

एतावत्तु विज्ञेया मध्यमस्य विदिक् स्थिताः।
इकारान्तो यशौ चापि तज्जारपुरुषः स्मृतौ ॥९॥

'अ क च ट त प' वर्ण हैं। आवह नीचे से व्योम है। यह ऊपर से '॰ उ व' से लेकर 'आ व य' पर्यन्त मूल में अंकित वर्ण के षोड़शत्व व्योमव्यापी तथा व्योमरूप पूर्व-पक्ष सिद्ध है। प्रथम भी वही है। मध्यम में विदिक् स्थित पापमुक्त पुरुष को जानना चाहिये। इकारान्त 'ष' तथा 'श'—ये जार पुरुष कहे गये है।।९।।

ऐकारोऽथ स्वरश्चाद्यौ नकारो बिन्दुदीपितः।
दीर्घान्तः प्रथमस्तस्य पश्चाद्यश्चायतश्च न ॥१०॥

'ऐ'कार तथा स्वर, आदि में बिन्दु-दीपित 'न'कार, उसके दीर्घान्त के पश्चात् जो है, वह है—आयत।।१०।।

थकारश्च यकारः स्यात्प्रवृत्तः स्वर एव च।
नकार आयतश्चैव विसर्गः सर्वतो मतः ॥११॥

थकार तथा यकार हैं—प्रकृत स्वर। नकार तथा आयत—इन सब स्थानों में विसर्ग जानना चाहिये।।११।।

यहवा अधस्ताद् व्योम अयमुपरिष्टात्। भाषा ऐन इशाम्ब यं अ य अ आ ना आ थ अ य अ आ न षोडशो विसर्गः। व्यापिने शिवाय अनन्ताय अनाथाय अनाथो मधुमासः। प्रथमोरसिद्धाद्द्वितीया प्रधिः।

मूल में अंकित 'य ह व' से 'अ आ न' पर्यन्त षोड़श विसर्गव्यापी, शिव, अनन्त, अनाथ—मधुमास है। प्रथम 'अ' सिद्ध है। द्वितीय प्रधि (चक्र का धार—नेमि) है। रेफान्तस्थ (जिसमें अन्त में रेफ है), प्रकृत्यन्त (प्रकृति के अन्त में) तकार दीर्घयुक्त है।

रेफास्तस्यः प्रकृत्यन्तस्तकारो दीर्घसंयुतः।
पश्चात्स्याद् ह्रस्व उकारो वकारश्च तथा मतः ॥१२॥
याद्य शान्ताः शाश्वतः स्युर्यश्चैवोङ्कारदीपितः।
ग ष ठः सस्वविद्वन्त इकारान्तो द्वितीयकः ॥१३॥

बाद में ह्रस्व है, उसी प्रकार उकार तथा वकार को भी जानना चाहिये। यादि (जिसके आदि मे 'य' है), शान्त (जिसके अन्त में 'श' है)—यह नित्य है। जो ॐकार से दीपित

है। ग-ष-ठ इत्यादि इकारान्त (जिसके अन्त में 'इ' है) द्वितीय है। यह द्वितीय प्रधि है। अ क च ट इत्यादि मूल में अंकित षोडशस्थित ध्रुव शाश्वत योगपीठ के लिये तृतीय प्रधि सिद्ध है।।१२-१३।।

अ क च ट त प य शान्ताः सर्वद्वितीयेनचाहवाराअधस्ताद् व्योम अयमुपरिष्टात् इ श र आ त अ य उ ध र आ व अ यः आशः अ श व आत अ ष उ य अ ग इ य अ ठ अ समा षोडशस्थिताय ध्रुवाय शाश्वताय योगपीठायः सा सिद्धा तृतीया प्रधिः।

साध्यस्थः स्यात् प्रकृत्यन्त आपस्तस्य तथा यतः ।
यन्नित्यं योगिने चेत्वे विज्ञेयाः स्युर्यथोक्तवत् ।।१४।।

साध्यस्थ होगा प्रकृत्यन्त एवं उसका जल भी वहीं होगा। उस नित्य वस्तु को योगी के लिये पूर्वोक्त के समान जानना चाहिये।।१४।।

आद्या यतो यकारः स्यान्नाहताश्वस्वरेण वः ।
अन्तरं च नमस्कारो विसर्गश्चान्त्यतः पदे ।।१५।।
विन्द्वन्तः पूर्वपक्षोत्र विसर्गश्चोत्तरा ध्रुवः ।
वसन्त एष विज्ञेयस्त्वग्रे ग्रीष्मादयः शुभाः ।।१६।।

जो आद्य 'य'कार है, वह आहत अश्वस्वर के समान नहीं है। मध्य में है—नमस्कार एवं अन्त पद में है—विसर्ग। विन्द्वन्त पूर्वपक्ष है। उत्तर में (बाद में) निश्चित विसर्ग है। इसे वसन्त ऋतु जानना चाहिये। पहले शुभ ग्रीष्मादि की बात हो चुकी है।।१५-१६।।

हवो अहवा अधस्ताद् व्योम अयमुपरिष्टात्। इशयः आस्त अ य इ न त प अ म उपज्ञा मम। आ ष य आ सा अ र च आ र अ य षोडशी विसर्गः। स्थिताय परित्यागिने ध्यानहाराय ॐ नमः सिद्धाः चतुर्थी प्रधिः; द्वितीयान्तः माधवो मासः। वसन्तर्तुः।

ह व अ ह व नीचे है। व्योम इसके ऊपर है। इ श य इत्यादि मूल में लिखित वर्ण षोडश विसर्ग हैं। 'स्थिताय' इत्यादि मूल में अंकित मन्त्र चतुर्थ प्रधि हैं। द्वितीयान्त है—माधव मास, वसन्त ऋतु।

विसर्गवांस्तु मः शुक्ले प्रकृत्यन्तः शावयुतः ।
स्वरवंतौ यशौ ज्ञेयौ रेफाद्यन्तौ पयौ स्मृतौ ।
भकारान्तो वकारस्तु प्रसवौ सर्वदैव हि ।
यश्चेज्ज्ञानस्तथान्यश्च स्पृष्टो दिष्टः सबिन्दुकः ।।१७।।

अ क च त ट प य शा भवेदधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। अ म इ य आ व अ प अ म अ र अ प र अं भ अ ऐ व ई श आ य अ य इ आ स अ ग इ ॐ नमो नमः सर्वप्रभवे ईशानाय असिद्धा पञ्चमी प्रधिः।

उकारो दीपितो यः स्याद्रेफादिन्द्रायुधो धनुः ।
स्वरवन्तौ यतौ तेन युयुक्त्यनु तथा भवेत् ॥१८॥

उकार दीपित मकार होगा, रेफ के पश्चात् इन्द्र का आयुध धनुष। 'य' तथा 'त' स्वरयुक्त होंगे (?)। 'प' तथा 'च' स्वरयुक्त तथा कादि रेफान्त-युक्त होंगे। उसके पश्चात् खद्योत तथा जैसे कहा गया हृदय जानना चाहिये।।१७-१८।।

स्वरवंतौ पचौ कादिरेफान्तश्च यथा युतः ।
पश्चात्खद्योतविज्ञेयो हृदयश्च यथोदितः ॥१९॥

भवेदधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। य म आ र द थ न अ यः अ त त उ प भः अ सः अ व आ क त र अ य अ उ ध अ र ऋ ह अ दः षोडशो विसर्गः। मूर्धायि तत्पुरुषाय व्यक्ताय अघोरहृदयाय च। अतस्तृतीयोरः शुक्रो मासः सिद्धा षष्ठी प्रधिः।

ऊपर व्योम है। 'य म आ' से लेकर 'ह अ दः' पर्यन्त (मूल में अंकित) १६ विसर्ग है। मस्तकरूप तत्पुरुष व्यक्त है तथा अघोर हृदय के उद्देश्य से तृतीय शुक्र (ज्येष्ठ) मास है। यह षष्ठी प्रधि सिद्ध है।

असौ ययतोऽन्यश्च ह्रस्वो यश्चायतो यतः ।
मदमामध्यमेकारादुकारेणैव दीपितः ॥२०॥
अदीर्घश्चैव दीर्घः स्यात्स्वरवन्तौ यशौ ततः ।
दकारादिर्यतुश्च स्याद्दीर्घो यस्तः स्वरेण च ॥२१॥
उकारवान् मकारः स्याद् रेफादिस्तन्मनोन्नतः ।
यद्देहान्ते च बिन्दुः स्यात्पक्षे शुक्ले तु पूजितः ॥२२॥

यह 'य य' एवं अन्य ह्रस्व 'ष' आयत है। 'म द म', मध्यम 'ऐ' 'गु'कार से दीपित है। अदीर्घ तथा दीर्घ होगा। तत्पश्चात् स्वरयुक्त 'य' तथा 'श', दकारादि 'य' एवं 'तु' दीर्घ होगा। 'य' तथा 'त' स्वरयुक्त होगा। 'उ'कार-युक्त मकार होगा। रेफादि उसका मनोन्नत होगा। जिसके देह में बिन्दु है, वह शुक्ल पक्ष में पूजित होता है।।२०-२२।।

क च ट त प य शाः चारिणि अधस्ताद् व्योम अयमुपरिष्टात्। आ य अ ष आ च अ म य प द अ व व उ आ इ य अ स उ द य आ य त उ म अ र तः आ ष वामदेवगुह्याय सद्योजाताय मूर्त्तये। असिद्धा सप्तमी प्रधिः।

'क च ट त प' इत्यादि मूल में अंकित अक्षर वामदेवगुह्य सद्योजात मूर्त्ति के उद्देश्य से कहे गये है। यह है सप्तमी प्रधि।

ऐकारान्तो यकारः स्यादक्षरं परमं पदम् ।
उकारो मौन मश्च स्यात्ततो गाभ्यादुकारवान् ॥२३॥

हीद्यायतश्च यस्तस्मादिकारान्तस्तथैव यत्।
आवेद्विद्धिः पुनर्यश्च गतकान्तः स उत्तमः ॥२४॥

ऐकारान्त यकार अक्षय परम पद है। नकार मौन 'म' हो जाता है। तदनन्तर उकारयुक्त होगा। जो आयत है, वह रहता है विकारान्त। इस प्रकार पुनः गतकान्त उत्तम है। रेफयुक्त दो पकारान्त उसके शेष स्वर हैं। ये दोनों ग्रीष्म मास हैं। अन्त में नमः शब्द कहना चाहिये।।२३-२४।।

पकारान्तौ सरेफौ द्वौ तदन्ते स्वर एव च।
तावेतौ ग्रैष्मिकौ मासौ नमोऽन्तः सम्प्रवक्ष्यते ॥२५॥

चारिणि अधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। ऐं ष ॐ ङ अ न ॐ ङ म अ न अ म ङ ग मा ह य त ह गमाहयः ॐ ङ य स्त ओ र अः षोडशो विसर्गः। ॐ यः ॐ नमो नमो नमः गुह्यातिगुह्याय गोप्तेन शा चतुर्थो चः। शुचिर्मासो ग्रैष्मऋतुः सिद्धा अष्टमी प्रधिः।

चारिणी नीचे है। ऊपर है व्योम। मूल मे अंकित 'ऐं ष ॐ' से लेकर 'ओ र अः' तक षोडश विसर्ग है। 'ॐ यः ॐ नमो नमो नमः' गुह्य से अतिगुह्य रक्षक है 'न श' चतुर्थ च। यह है—ज्येष्ठ मास, ग्रीष्म ऋतु तथा अष्टमी प्रधि सिद्ध।।२५।।

हकारान्तो नकारः स्याद्वस्तुत आयतः स्वरः।
स्वरवन्तौ यशौ तश्च रेफादीरोयुतश्च यः ॥२६॥

हकारान्त नकार वास्तव में आयत स्वर है। स्वरवन्त 'य श' तथा 'त' है। रेफ के पश्चात् 'ई र' होगा 'य' से संयुक्त।।२६।।

गोदीर्घाधः प्रकृत्यन्तः ककारस्तच्च दीर्घवान्।
यकारः स्वरवान् जादि यश्चैवोकारदीपितः ॥२७॥
हकारान्तस्तथाकारो रेफ उकारवांस्ततः।
बिन्दुरित्यपदो ज्ञेयो नभस्यः पूर्वपक्षकृत् ॥२८॥

गोदीर्घाध प्रकृत्यन्त तथा दीर्घयुक्त ककार, स्वरयुक्त यकार आदि तथा उकार दीपित यकार। हकारान्त 'आ'कार, तदनन्तर 'उ'कारयुक्त रेफ। बिन्दु को अपद जानना चाहिये। नभस्य (भाद्रमास) पूर्व पञ्चकारक।।२७-२८।।

अ क च ट त प य शा आत्मतन्त्रे। अधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। हे न अ घ आरी अ प अ सारव उप आ ग हे ध स क आत औ प उ जय हे त ऊ त निधनाय सर्वगोघकृता कष्टोऽतिरूपसिद्धा नवमी प्रधिः।

'अ क च ट त प य श' आत्मतन्त्र है। निम्न में व्योम है, यह (आत्मतन्त्र) है ऊपर। मूल में अंकित 'हे न अ' से लेकर 'हे त ऊ त' यह है निधन का निमित्त अतिरूप सिद्ध नवमी प्रधि।

षोडशर्चपरो दीर्घः पकारः स्यात्पराश्रये स्वरो दीपितः ।
आद्यश्च चेन्यात्रा स्युश्च शुश्चैकारेण दीपितः ॥२९॥
व्याख्यातो वै नमस्त्वेष यथावल्लक्षणान्वितः ।
नमश्चैवोच्यते भूयोः यथा वर्णो यथाक्रमम् ॥३०॥

१६ अक्षरों के पश्चात् दीर्घ 'प'कार है। पराश्रय में स्वर दीप्त है। 'च शु च' ऐकार द्वारा दीपित है। इस प्रकार उन लक्षणयुक्त 'नमः' शब्द व्याख्यात हुआ। अब वर्ण तथा क्रम के अनुसार नमः शब्द की व्याख्या होगी।।२९-३०।।

आत्मतन्त्र अधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। आय अय अय अर आय अयन्तर अप अपय अत अनय एव विसर्गः षोडशः। अजाय परमेश्वरपराय अचेतन अपञ्चमो नभोमासः सिद्धा दशमी प्रधिः।

आत्मतन्त्र नीचे है। व्योम ऊपर है। 'आय अय' से लेकर 'अपय अत अनय' पर्यन्त षोडश विसर्ग हैं। अज परमेश्वर का अचेतन अपंचम नभो मास (श्रावण मास) दशमी प्रधि सिद्ध है।

स्वर एवास्तुत वनव्योम्नि स्यात्सानुनासिकः ।
पुनः सत्यश्च दीर्घश्च पञ्चात्स्यादि नकारवान् ॥३१॥
अयमेवमथाप्रमेय स्वरेफउकारदीपितः ।
पूर्ववच्च यकारः स्यात्तत्सर्वं पुनरेव तु ॥३२॥

जो भी हो 'त व न' अनुनासिक के साथ व्योम में स्थित है। सत्य तथा दीर्घ है। बाद में 'ड' नकारयुक्त है। यहीं अनन्तर अप्रमेय है। स्वरेफ में 'उ'कार दीपित है। पहले की तरह 'य'कार होगा। वे सब (जो पहले कहे गये) पुनः होंगे।।३१-३२।।

अ क च ट त प य शान्ता इति स्थिते। अधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। अव अन उवय इ यन आवय इयन अधर षोडशो विसर्गः। तेन व्योम्नि अव्योम्नि ऊ रूपिन्। अरूपं सिद्धा एकादशी प्रधिः।

अ क च ट त प इत्यादि के रहने के कारण नीचे व्योम है। ये 'अकचट' आदि उसके ऊपर हैं। 'अव अन' (मृत्योक्त) इत्यादि षोडश विसर्ग है। उसके द्वारा व्योम तथा अव्योम में 'अ ऊ' रूपवान् है। अरूप सिद्ध है एकादश प्रधि।

परेऽपिन्यश्च रेफान्तः स्थश्च स्यात्स्वरवांस्ततः ।
मकारः प्रथमाश्चेत्स्युस्तेजश्च विविसर्गवान् ॥३३॥

परान्तरण स्वरयुक्त होगा। मकार प्रथमा होने के कारण तेज विसर्गयुक्त होगा।।३३।।

यो योऽन्तस्थः प्रकृत्यन्तो विसर्गश्च पुनश्चतो। नभस्व एष व्याख्यातो वर्षाख्यश्च ऋतुस्त्वयम्। इनस्त्विये अधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। इय अपर अथ अम एत अय एत अपद्रुत षोडशो विसर्गः। यिनः प्रथमः। तेजः ॐ ज्योतिः ऊं षष्ठो वः नभस्यो मासः। वर्षाख्य ऋतुः सिद्धा द्वादशी प्रधिः।

जो जो अन्तस्थ हैं तथा प्रकृति के अन्त में जो विसर्ग है, इन्हें भाद्रमास कहकर व्याख्या की जाती है। यह है—वर्षाकाल। 'इन' नीचे है, व्योम ऊपर है। 'इय' से लेकर 'अपर' (अपद्रुत) पर्यन्त षोडश विसर्ग हैं। 'ॐ ज्योति' से लेकर 'षष्ठो वः' पर्यन्त भाद्रमास है, वर्षा ऋतु। यह है सिद्ध द्वादशी प्रधि।

इष आदिगकारः स्याद्भूयाच्च तदनन्तरम्।
अश्नलो लग्न ऐकारं आद्यः स्यात्तदनन्तरम्॥३४॥
धुकारश्च यआद्यश्च तस्मेशाद्यस्तथैव च।
अकारहीपितो नः स्यादश्नैकारेण दीपितः॥३५॥

'इ ष' आदि गकार है। उसमें 'अश्नल' लग्न है। उसमें ऐकार आद्य होगा। धूकार एवं आद्य य, उसी तरह भस्मेशाद्य अकार के पश्चात् दीपित है एवं नकार ऐकार के द्वारा दीपित है।।३४-३५।।

क च ट त प य शा भूतिरधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। अदूर अयम अ अगन अभव अम अ अभय सम अ आन य ऐ षोडशतत्त्वअरूपअनये अधूप अभस्म अनादियं सिद्धा त्रयोदशी प्रधिः।

'क च ट त प य श' भूति के निम्न है। व्योम ऊपर है। 'अदूर अयम' इत्यादि से लेकर 'आन य ऐ' षोडश तत्त्व हैं। 'अरूप अनग्न अधूप अभस्म अनादिः' त्रयोदश प्रधि सिद्ध है।

दीर्घा नकाराश्चत्वारो धूकाराश्च तथैव च।
ऊकारान्तः समो ज्ञेयः सोक्षरोभयदीपितः॥३६॥
पुनर्विसर्गरहितो ह्रस्वो वसु विसर्गवान्।
अक्षरश्शोथवक्रान्तो विसर्गेण विभूषितः॥३७॥

दीर्घ नकार तथा उसके धूकार को उकारान्त समान जानना चाहिये। वह उकार उभय दीपित है। अकार विसर्गरहित 'र' स्व वसु विसर्गयुक्त है। 'श' अक्षर यक्रान्त विसर्ग से विभूषित है।।३६-३७।।

भूरधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। आन आन ऊध ऊध ऊं ऊं रभ ऊभ ऊं आवसः षोडशः। ना ना ना ना धू धू धू धू ऊं भुवः ऊं स्वः आसप्तमो रसः इषो मासः। सिद्धा चतुर्दशी प्रधिः।

नीचे पृथ्वी। व्योम ऊपर। 'आन आन' से लेकर 'ॐ आवसः' पर्यन्त षोडश तत्त्व है। 'नाना नाना' से लेकर 'स्व आसप्तमो रसः' पर्यन्त आश्विन मास है। यह चतुर्दश प्रधि सिद्ध है।

ऊर्ज्जस्योर्क आदिः स्यान्नद्रेकारेण दीपितः।
स्वरवन्तौ धनौ भूयो निधौ नः परिकीर्त्तितः ॥३८॥
ओंकारान्तो नकारः स्याद्धादिर्भौवस्वरान्वितः।
प्रकृत्यासो मकारश्च शकारो बिन्दुरेव च ॥३९॥

उर्ज का अर्क आदि होता है। नद् ऐकार द्वारा दीपित 'ध' तथा 'न' स्वरयुक्त है। और 'नि' तथा 'ध' यह दो 'न' कहकर कीर्त्तित हो गये। ॐकारान्त 'न'कार का 'धादि' 'भौव' स्वरयुक्त है। प्रकृति के साथ सोमकार तथा शकार बिन्दु है।।३८-३९।।

अ क च त ट प यशाः महीरथस्तादव्योम अयमुपरिष्टात्। आ इ न अ धः अ म इ न अ ध अ न ल इ न अधः ॐ न अ द भ अ व इ श अवः अ स षोडशतत्त्वं अनिधननिधानोद्भवशिवशः। सिद्धा पञ्चदशी प्रधिः।

'अ क च ट त प य श' पृथ्वी के नीचे है। व्योम ऊपर है। मूलोक्त 'आ इ न' से लेकर 'अवः अ स' षोडश तत्त्व अनिधन निधानोद्भव शिव है। पञ्चदश प्रधि सिद्ध है।

रेफपूर्वो दकारः स्यात्परो स्वरेण मानवः।
आदिर्मध्याह्नकारेण मकारश्च स्वरान्वितः ॥४०॥
पकारादीपितो हश्च साक्षाद्दीर्घैरमाततेः।
हकार अपतोदः स्यादेकारेण तु दीपितः ॥४१॥
वः स्वः स्यात् स्वरवान् रश्च दकारोभयतस्तथा।
अन्तवतीशरेखा लक्षणतश्च शरदृतुः ॥४२॥

रेफपूर्वक दकार 'आ' के पश्चात् स्वरयुक्त मानव। आदि मध्याह्नकार के साथ स्वरयुक्त मकार। पकार दीपित 'ह' साक्षात् दीर्घयुक्त अम्। हकार एकार द्वारा दीपित। 'वः स्वः' पर स्वरयुक्त 'र'। ऐसे ही उभयतः दकार अन्तवतीश रेखा-लक्षणार्थ यह है शरद् ऋतु।।४०-४२।।

गहाथस्तादव्योम अयमुपरिष्टात्। अर च अप अर आम अत मनप असव अर अप आह यत अस आद्यः षोडशो विसर्गः। पूर्वपरआत्मने महेश्वर महादेवसमाः अष्टमीतिः। ऊर्जो मासः। शरदृतुः। असिद्धा षोडशी प्रधिः।

गहा नीचे। व्योम ऊपर। 'अर च' से लेकर 'अस आद्यः' षोडश विसर्ग। (?)····· कीर्त्तिक मास। शरत् ऋतु। असिद्ध षोड़श प्रधि।

एकारान्तः सहेवः स्यात्तरादिस्तु छान्तवः ।
नमो दीर्घो हकारः स्यादेकारेण तु तत्सह ॥४३॥
स्वरवान्वै जकारोद्वयशोकारेण दीपितः ।
ग आयतः प्रकृश्नावयकारस्तच्च पूर्ववत् ॥४४॥
वयव्यौमाथुकारेण दीपितौ तु सबिन्दुकौ ।
विन्द्वन्तः शुक्लपक्षः स्याद्व्योमन्तः स्यादिरुच्यते ॥४५॥

ऐकारान्त के साथ 'इव' तरादि छान्तव। 'न' तथा 'म' दीर्घ। उसके साथ 'ए'कार युक्त होगा। हकार स्वरयुक्त होकर दो 'श' द्वारा दीपित इत्यादि।।४३-४५।।

(श्लोक ४४-४५ का अर्थ कुछ स्पष्ट नहीं है; अतः अनुवाद में असमर्थता है)

भूम्यधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। ऐव असर अन अम आह ऐत अज आय आग इव अव ऊम षोडशतत्त्वं चेश्वरम्। हातेजावायोगाधिपतये मुण्ण मां च असिद्धा सप्तदशी प्रधिः।

भूमि नीचे है। व्योम ऊपर है। 'ऐव असर' से लेकर 'इव अव ऊम' षोडश तत्त्व तथा ईश्वर हैं। 'गणाधिपति हमें मुक्त करो'। यह असिद्ध सप्तदश प्रधि है।

चकारादिर्मे शुक्लेऽथ स्याद्रान्तो यो मधौ ततः ।
पुनरेतेशकारा फो दीर्घाभूयउवचतौ ॥४६॥
स्वरवन्तौ च तौ द्वित्सौ विसर्गश्चान्तिमे पदे ।
सह ऐष समाख्यातस्सहस्यः सूर्यसंततः ॥४७॥

(इन दोनों का अर्थ स्पष्ट नहीं है; अतः आंशिक अर्थ प्रस्तुत है)

चकारादि 'म', रान्त 'म'·····। पुनः ये 'शकार', 'फ' दीर्घ·····। स्वरयुक्त दो मकार। शेष विसर्ग। इसे 'ऐष' कहा है। यह है—पौष मास।।४६-४७।।

भूम्यधस्ताद्व्योम अयमुपरिष्टात्। अव अपर अम अल अपर अल अप अथ अश अर च अम अर अव षोडशो विसर्गः। वः प्रथमः ऊं सर्वः ऊं भवः ऊं अनवमोनः सहोमासः सिद्धाष्टादशी प्रधिः।

भूमि है निम्न, ऊपर है यह व्योम। 'अव अपर' से लेकर 'अम अर अव' षोडश विसर्ग। 'व' प्रथम, सर्व, भव, अनवमान। पौष मास। यह अष्टादशी प्रधि सिद्ध।

भं आदिर्व ओंकारान्तो दादिर्भः स्यात्स्वरेणवः ।
शकारो वश्च रेफान्तो द्विरकारान्तो तस्तथा ॥४८॥
उकारवान् सश्च सोऽथ रेफान्तः पादशौ ततः ।
रेफाद्दीर्घः सदीर्घान्तः शुक्लोऽयं बिन्दुदीपितः ॥४९॥

'भ' आदि, ओकारान्त 'व', दादि भ, स्वरयुक्त 'व', शकार, रेफान्त 'व' तथा द्विरकारान्त 'त'। ऊकार युक्त 'स' एवं रेफान्त 'ष', रेफ के पश्चात् दीर्घयुक्त। दीर्घान्त इस शुक्ल बिन्दु के द्वारा दीपित है।।४८-४९।।

क च ट त प य शा इतरेतरव्योम अयमुपरिष्टात्। भ ऊं थ अदव अर अस अरव उभ अत उस अश्व अपर अद अस आरव अस षोडशत्वं भवोद्भवसर्वभूत-सुखप्रदसर्वसाध्यसिद्धः। एकोनविंशतिः प्रधिः।

क च ट त प य श इतरेतर हैं। इसके ऊपर है—व्योम। 'भ ॐ थ' से लेकर 'अस आरव अस' पर्यन्त षोडशत्व है। समस्त प्राणीगण का उद्भव, सर्व सुखप्रद तथा सकल साध्य का सिद्ध है। यह है उन्नीस प्रधि।

चरेद्व्रतं सुसिद्ध्यर्थं यथा वक्ष्यामि तन्त्रजम्।
प्राणायामसहस्रं तु बीजतत्त्वेन धारयेत् ।।५०।।

सम्यक् सिद्धि-हेतु अन्य व्रत का आचरण करे, जैसे मैं तन्त्र से कहूँगा। सहस्र प्राणायाम बीजतत्त्व के द्वारा धारण करे।।५०।।

पञ्चाग्निभिः शिवैरङ्गैः स्याद्वृतोऽनिलभक्षणः।
त्र्यहं त्र्यहं त्रिकं प्यस्तं जपेत्तापे जले क्रमात् ।।५१।।

पञ्चाग्नि (चारो ओर प्रज्ज्वलित अग्निकुण्ड हो तथा माथा के ऊपर तप्त सूर्य हो) साधन रूप मंगलमय अंग द्वारा वृत होकर वायु-भक्षण करके तीन दिन पञ्चाग्नि साधन करे तथा तीन दिन जल में जप करे।।५१।।

गुर्वाज्ञया भस्मसुप्स्यान्तर्धर्माहं पदमस्तके।
भुञ्जीताथोचितं भक्ष्यं योगस्यास्य सदा विधिः ।।५२।।

गुरुदेव के आदेश को लेकर भस्म लगाकर भस्म तथा (जल में?) अन्तर्धर्मा होकर अहं पद मस्तक में रखकर यथोचित भोजन करे। यह इस योग की सर्वदा की विधि है।।५२।।

चरित्वैतद्व्रतं पुण्यं मुच्यते सर्वपातकैः।
पूज्यते सर्वसिद्धैश्च ज्ञानं चास्य प्रवर्तते ।।५३।।
ये भवन्ति हि वै दोषाः साधने दिव्यमानुषाः।
शरीरजास्तथा रागा नश्यन्ति तेन वै ध्रुवम् ।।५४।।
भूतव्रतान्तसिद्ध्यर्थमेकान्ते तु मनोरमे।
आत्मतुल्यसहायः स्याद्बीजनिर्दग्धकल्मषः ।।५५।।

इस पुण्य व्रत का आचरण करके सब पापों से मुक्ति मिलती है और समस्त सिद्धि के पास पूजा होती है तथा ज्ञान भी प्रवर्त्तित होता है। साधन में जो दैव, मनुष्य, शरीरजात

तथा आसक्ति के कारण जो दोष उत्पन्न होता है, वह इस व्रत से निश्चित नष्ट हो जाता है। भूत व्रतान्त सिद्धि के लिये एकान्त मनोरम स्थान में अपने समान सहायक रखकर बीज मन्त्रों द्वारा पाप (कल्मष) निर्दग्ध कर दिया जा सकता है।।५३-५५।।

एकादशा निजव्याधिर्बोद्धव्याङ्गुष्ठमस्तके।
ललाटे तेन संपीड्य सर्वविघ्नान्निवारयेत् ।।५६।।

एकादश व्याधि (नाश-हेतु) अंगुष्ठ को मस्तक (पर लाकर) जानकर उससे ललाट को दबाने से समस्त विघ्न शान्त हो जाते हैं।।५६।।

आहारार्थं च सर्वेषां चरेत्सम्यग्यथाक्रमम्।
वारुणे सलिलाहारं शुक्त्यजाक्षीरपोऽपि वा ।।५७।।
शक्तस्य जपतस्तस्य विघ्नान्येतानि लक्षयेत्।
मेघानां स्तनितं विद्युद्वृष्टिक्षोभश्च सागरे ।।५८।।
मत्स्यादयश्च दृश्यन्ते व्रते वारुणसंज्ञके।
कापिलं घृतमाग्नेये भुञ्जतो व्रतमाचरेत् ।।५९।।

सबके आहारार्थ यथाक्रम से आचरण करे। जल में जल का पान करे अथवा चार तोला परिमाण बकरी के दुग्ध का पान करे। जप में समर्थ व्यक्ति इन विघ्नों को लक्ष्य करे—मेघ ध्वनि, विद्युत्, वृष्टि से सागर की क्षुब्धता (तूफान आदि)। वारुण नामक व्रत में मत्स्यादि। आग्नेय व्रत में कपिला गौ के दूध से घृत निकाल कर (उसका भोजन करके) व्रत का आचरण करे।।५७-५९।।

सर्वमादीप्यते तस्य शुक्लार्द्धं च तथोदकम्।
वायव्येऽनिलभक्ष्यः स्याच्छ्वेताजाक्षीरभुग्यथा ।।६०।।
विघ्नं पात्राशने पातो वातक्षोभश्च दारुणः।
आशोकं गोरसं पीत्वा व्रतमेतत्समाचरेत् ।।६१।।

(अग्नि व्रत में) तदनन्तर कुछ दीप्त होकर तथा शुक्ल अर्घ्य का जल (ग्रहण करे)। वायुव्रत में वायुपान करे तथा श्वेत वर्ण की बकरी के दुग्ध का भक्षण करे। विघ्न परिलक्षित होते हैं—विद्युत्पात, दारुण वातक्षोभ। दुःख उपस्थित होने के पूर्व तक गाय का दुग्ध पान करे तथा व्रताचरण करे।।६०-६१।।

विघ्नं सर्गस्य सम्पातो ज्योतिषां पतनं तथा।
भूतानामिह सर्वेषामशक्तश्चरितुं व्रता ।।६२।।
भूतयोनिव्रतं कुर्यादेषामन्यतमेन तु।
व्रतेन माससिद्धायामस्यां सिद्धा भवन्ति ते ।।६३।।
हन्यादेतेन वै रोगान्दिव्यान्भौमान्स्वदेहजान्।
एतदेव व्रतङ्कुर्य्याच्छान्तिकर्मणि मन्त्रवित् ।।६४।।

सभी प्राणियों में व्रत आचरण में अशक्त व्यक्तियों को विघ्न परिलक्षित होता है—सृष्टि का विनाश, नक्षत्रादि का पतन। भूतयोनि व्रत करे। इन सबमें से किसी एक व्रत के आचरण द्वारा इसे करे। एक मास में व्रत द्वारा सिद्ध हो जाने पर सब (कामनायें) इससे सिद्ध हो जाती हैं। इस व्रत द्वारा दिव्य-भौम तथा निज देहजात रोगों का विनाश करे। मन्त्रज्ञ साधक शान्ति कर्मों में इन्हीं व्रत का पालन करे।।६२-६४।।

व्रतं वैवस्वतं कुर्वन् शाकाहारो भवेन्नरः ।
साध्यानृषीन्वसूंश्चैव पश्येत्सर्वानशेषतः ।।६५।।
विघ्नप्रशमनं प्रोक्तं सर्वमन्त्रविधिस्त्वयम् ।
मध्ये ध्यायञ्जपेन्मन्त्रन्तत्त्वस्य हृदयस्य च ।।६६।।

सूर्य के व्रत में शाकाहार करना चाहिये। साध्य-ऋषि वसुगण तथा सबको सर्वतोभाव से देखे। इन सब मन्त्रों का विधान विघ्ननाशार्थ कहा गया है। बीच में ध्यान करे। तत्त्व तथा हृदय मन्त्र का जप भी करे।।६५-६६।।

दृढासनः स्थिरमना जितवायुर्जितेन्द्रियः ।
मुख्यां सिद्धिमवाप्नोति तत्त्ववाजप्रसूतिजाम् ।।६७।।

इति श्रीसाम्बपुराणे एकषष्टितमेऽध्याये ज्ञानोत्तरे शरीरसाधनमष्टमं पटलम्

●

दृढ़ासन, स्थिर मन, जितवायु तथा जितेन्द्रिय होकर तत्त्व तथा यज्ञ से मुख्य सिद्धि का लाभ करे।।६७।।

श्री साम्बपुराणोक्त इकसठवें अध्याय में ज्ञानोत्तर शरीर-साधन नामक अष्टम पटल समाप्त

द्विषष्टितमोऽध्यायः

(सर्वकार्यसिद्धिविधानम्)

सिद्धये सर्वकार्याणां विधानमभिधीयते।
सम्पुटानां यथा तत्त्वं कर्मणां सिद्धयेऽपि च ॥१॥
सकलीकृत्य देहं त्वं प्राणायामश्च योजयेत्।
शिवाख्यां परमाख्यां च योनिं हृन्नाभितस्तथा ॥२॥
वायुरग्नेरधस्ताच्च संहरन्सह पातकैः।
अन्तरे प्राणमायच्छेत्सद्यः सिध्यति योगवित् ॥३॥
ब्रह्मतत्त्वस्त्रिभिः शोध्यापद्य तेन शुभं भवेत्।
परस्यापि दहेन्मत्री ग्रामं नगरमेव च ॥४॥

समस्त कार्यसिद्धि-हेतु विधान तथा कर्मसिद्धि-हेतु सम्पुट के यथार्थ तत्त्व को कहा जा रहा है। अपनी देह को एकत्र (एकाग्र) करके प्राणायाम करे। शिवा एवं परमा योनि को हृदय तथा नाभि से, वायु को अग्नि के नीचे से पातक का संहार करे। अन्तर को प्राणयुक्त करने से योगी तत्काल सिद्धिलाभ करता है। ब्रह्मतत्त्व से तीन द्वारा (उपरोक्त तीन से) शोधन करने से अपना तथा अन्य का शुभ होता है। इसका मन्त्री (मननकारी साधक) ग्राम तथा नगर को भी दग्ध कर सकता है।।१-४।।

गृहं चापि दुराधर्षः भूतं चापि महाबलम्।
निहन्ति वै प्रयुक्तः सन् क्षणादग्निदिवेन्धनम् ॥५॥
व्याधिं चापि दुराबाधां तनुत्यां दैविकां तथा।
निहन्ति तत्र तूर्णं च दिवाकरव्रती नरः ॥६॥

दुर्धर्ष गृह तथा महाबलशाली भूत को (प्रयुक्त होने पर क्षणकाल में अग्नि जैसे काष्ठ को दग्ध करती है, वैसे) यह दग्ध कर देता है। सूर्यव्रतधारी नर देह के तथा दैव से दुराराध्य व्याधि का भी शीघ्र विनाश कर देता है।।५-६।।

बीजयोनिर्भवन्मध्ये पृथिव्याश्चारुणस्य च।
पूर्ववद् ध्यानयोगः स्यात्प्राणयोगस्तथैव च ॥७॥
तेषामध्ययने चैव ये पूर्वं चैव साधिताः।
शान्तिं चैतां प्रयुञ्जीत कृतकृत्यो भवेत्तदा ॥८॥

पृथ्वी तथा आरुण के मध्य बीजयोनि होगी एवं पूर्व के समान ध्यानयोग एवं प्राणयोग होगा। उनके अध्ययन के पूर्व जो साधित हुआ है, उसका शान्ति विधान करके वह कृतकृत्य हो जाता है।।७-८।।

द्रव्यापहरणो वापि न्यासनिर्यातनेऽपि वा।
नाशने चैव देवानां ग्रहोत्पादनकर्मणि ॥९॥
कुर्वन्नेतानि योगी स्याद्वायुरग्निमिवेन्धनम्।
परस्थानां च सर्वेषामपाहारः प्रयुज्यते ॥१०॥

द्रव्य का अपहरण, न्यास का निर्यातन, किंवा नाशन तथा देवताओं के ग्रहोत्पादन कर्म में इनका विधान करके योगी वायु के समान होता है अर्थात् प्रज्ज्वलित अग्नि के लिये जैसे वायु सहायक होती है, वैसे ही योगी इन कर्मों में सहायक हो जाता है। अन्य से इसको गोपित रखना होता है।।९-१०।।

एष संहरते सर्वं यत्किञ्चिज्जगतीगतम्।
आरूढः संशये युञ्जन्नान्यथा तु कदाचन ॥११॥
स तु होमस्तथाग्नौ तु यदा रोगेण युज्यते।
तत्क्षणाद्धन्ति तान् सर्वान् सरोगान् हन्ति योनिजान् ॥१२॥
स्थावरं जङ्गमं वापि कृत्रिमं चापि यद्विषम्।
क्षणान्नाशयति ह्येषः यदि सम्यक् प्रयुज्यते ॥१३॥

वे इस जगत् के सब कुछ का संहार कर सकते हैं। आरूढ़ योगी संशय उपस्थित होने पर ऐसा करते हैं, अन्यथा नहीं करते। रोग होने पर अग्नि में होम करें। ऐसा होने पर यह सब, विशेषकर योनिज समस्त रोग तत्काल विनष्ट हो जाते हैं। यदि सम्यक् रूप से प्रयोग किया जाय तब स्थावर, जंगम अथवा कृत्रिम विष भी तत्काल नष्ट हो जाता है।।११-१३।।

संक्रमेण तथा व्याधिर्विपरीतेन योजितः।
चिकित्सामन्त्रपूर्वेण क्रीडार्थमनुयोजयेत् ॥१४॥
ध्यायेत्तु वारुणे वायुं शांत्यर्थं शिवसम्पुटे।
वृष्टिं कारयते ह्येष भूतयोनिः सबीजकः ॥१५॥
षड्विधं च सृजत्यस्य भूतसंहारिणस्ततः।
वायुनावेष्टयेत्सर्वं स्तमितं स्याज्जगन्महत् ॥१६॥

संक्रामक व्याधि होने पर विपरीत भाव से युक्त करना होगा। मन्त्र से इसकी चिकित्सा होगी। उसे क्रीड़ार्थ युक्त करे। शान्ति-हेतु शिवसम्पुट वारुण में वायु का ध्यान करना चाहिये। ऐसा करने से वृष्टि होगी। यह है—बीज के साथ भूतयोनि।।१४-१६।।

अश्वानान्तु जपेन्मन्त्रं योगिनां च गतिं तथा।
निरुन्ध्याद्यद्यदीक्षेत व्रणव्याधिविषं च यत् ॥१७॥
ध्यायंश्च होमयेन्नित्यं युक्तो मन्त्रार्चने नरः।
उद्घाटने च संहारे योज्यश्चापि दशात्मकः ॥१८॥

अश्व का मन्त्र जप करे। ऐसा करने से योगियों की गति तक का निरोध हो जाता है। यहाँ तक कि जो-जो देखा जायेगा, जो व्रण है, व्याधि अथवा विष है, सबका निरोध हो जायेगा। मन्त्र तथा अर्चन में लगा व्यक्ति ध्यान करके नित्य होम करे। उद्घाटन तथा संहार में भी ऐसे ही दशात्मक मन्त्र का प्रयोग करे।।१७-१८।।

सर्वत्र वेष्टनं कृत्वा ततः शान्तिं प्रयोजयेत्।
परमपुटमध्ये तु द्रव्यमन्त्रेण योजयेत्।
असन्देहेन सिद्ध्येत बद्ध्वा मन्त्रविभागशः ॥१९॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे द्विषष्टितमेऽध्याये नवमं पटलम्

●

सर्वत्र वेष्टन करे। तदनन्तर शान्ति प्रदान करे। परम पुट के मध्य में द्रव्य मन्त्र द्वारा प्रयोग करे। ऐसे मन्त्रविभाग से बन्धन करने पर निश्चय सिद्धि प्राप्त होती है।।१९।।

श्री साम्बपुराणोक्त सकल कार्यसिद्धि विधाननामक बासठवाँ अध्याय समाप्त

●

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

साधकस्येह युक्तस्य व्याधिर्भवति दारुणः ।
उपसर्गः समं तस्य चिकित्सास्य न दुष्यति ॥१॥
धातुरेको ग्रहो वापि कोष्ठे त्वध्यासितोऽपि वा ।
स्मृत्वा यो मनसापायो मन्त्रकैर्न प्रशाम्यति ॥२॥
क्षेत्राच्चाण्डालसेनायाश्चाग्निहोत्रगृहात्तथा ।
तस्मादपञ्चतत्तूर्णं मासवृद्ध्यै प्रकल्पयेत् ॥३॥
क्षेत्राच्चाण्डालसेनाच्च तथा द्विजपरा अपि ।
क्रमवृद्धं च तत्सर्वे बध्नीयान्मिश्रितं क्रमात् ॥४॥

साधन में प्रवृत्त साधक को दारुण व्याधि हो सकती है; साथ ही उपसर्ग भी परिलक्षित होते हैं। इनकी चिकित्सा करने में कोई दोष नहीं है। धातुज, किंवा ग्रहादि आक्रमण-जनित अथवा कोष्ठ में अध्यासित व्याधि, जो मनसा पाप (जनित) है, वह मन्त्र से भी प्रशमित नहीं होती। चण्डाल सेना के क्षेत्र से, किंवा अग्निहोत्री ब्राह्मण के घर से अपञ्च लाकर उसकी मासवृद्धि की व्यवस्था करनी चाहिये। क्षेत्र से तथा चण्डाल-सेना से द्विज-परायण व्यक्ति भी क्रमवृद्धि-हेतु जो सब मिश्रित करे, उसका क्रमश बन्धन करे।।१-४।।

तिस्रः पोटलिकाः कार्याः सूतिकर्पटकेन च ।
संमार्जनतटे चैव आरभेत चरोः क्रियाम् ॥५॥
अन्यजानां गृहस्थैश्च श्नपयेत्तण्डुलैश्च ताम् ।
ध्यायन्वै पातकं घोरं सम्पुटं यदि दारुणम् ॥६॥
यावच्च श्रयते वह्नौ तावद्रागः प्रणश्यति ।
खदिरेप्यतवा शूले चैकवृद्ध्या क्रमं गताः ॥७॥
बद्धाः पोटलिकाः सर्वाप्यपूर्वमवस्थिताः ।
वरुणे त्वाकृतिं कृत्वा क्षुरकृत्तां तु होमयेत् ॥८॥

तीन पोटली बनाये। सूति के कर्पटक द्वारा तथा सम्मार्जन तट पर चरु की क्रिया आरम्भ करे। अन्य जाति के गृहस्थ के तण्डुल (चावल) द्वारा उस चरु का पाक करे। घोर पातक का चिन्तन करके दारुण सम्पुट करे। जब तक वह्नि में पाक होगा, उतने में रोग प्रशमित हो जायेगा। खदिर अथवा शूल में क्रमशः एक-एक की वृद्धि करे। पहले से रखी सभी पोटली को बन्द करे। वरुण की आकृति बना करके छूरे से उसको छिन्न करके होम करे।।५-८।।

रुधिरं च विषं तैलमाहुत्यन्ते तु दीपनम्।
अन्ये पोटलिकेद्धोतुं जुहुयाच्छूललक्षिते ॥९॥
भागं बद्ध्वा तृतीयन्तु चरोः कर्म समारभेत्।
निवेद्य च बलिं तेन स्नायाद्रोगान्निहन्ति सः ॥१०॥
तत्क्षणाच्छुद्धिमाप्नोति चन्द्रवत्परिनिर्मलः।
हत्वा रोगसहस्राणि ततः साध्यांश्च साधयेत् ॥११॥

रुधिर, विष तथा तैल को आहुति के अन्त में प्रदीप्त करे। अन्य दो शूलचिह्नित पुटली की आहुति प्रदान करे। तृतीय भाग बद्ध करके चरु कर्म करना चाहिये। उससे बलि (उपहार) निवेदन करके स्नान करे। ऐसा होने पर रोग विनष्ट हो जाता है।।९-११।।

शरीरान्मनसश्चैव ये तु रोगाः सुदारुणाः।
पातकान्यातयेत्सर्वान् कृतज्ञः साधुसम्मतः ॥१२॥
राजा विप्रस्तथा वर्णाः साधनार्थं प्रतिष्ठिताः।
आपत्सु घातयेत्तीव्रा विधिना घातकाः स तु ॥१३॥

जो सुदारुण शारीरिक तथा मानसिक रोग हैं, कृतज्ञ साधुजन-सम्मत उपाय से वह व्यक्ति समस्त पातकों का विनाश कर देता है। राजा, ब्राह्मण अथवा अन्य वर्ण के जो व्यक्ति साधनार्थ प्रतिष्ठित होते हैं, आपत् काल में उनका तीव्र भाव से विनाश करते हैं (पाप का विनाश करते हैं), विधि द्वारा वे बाधक होते हैं।।१२-१३।।

विनायका हरन्त्येते रूपैः सिद्धैश्च मन्त्रिणाम्।
न दोषघातने तेषामिति रुद्रः प्रभाषते ॥१४॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे त्रिषष्टितमोऽध्याये दशमं पटलं समाप्तम्

●

साधक के सिद्ध रूप से विनायक गण विनाश (पापों का) करते हैं। इस घातन में उसका कोई दोष नहीं होता, यह रुद्र ने कहा है।।१४।।

श्री साम्बपुराणोक्त ज्ञानोत्तर में रोगविनाश नामक तिरेसठवें अध्याय में दशम पटल समाप्त

●

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

(मारणाभिचारः)

अभिचारविधिं श्रुत्वा मन्त्रः सर्वार्तिनाशनः ।
अधःशूलान् ग्रहान् क्रूरान् भैरवांश्च महाबलान् ॥१॥
महामारी कुलोद्भूतानुत्सादयति मन्त्रवित् ।
यमजिह्वां मृत्युभूतमघोरां चापि योजयेत् ॥२॥
प्राह्वनं तु महारौद्रं शत्रुपक्षभयंकरम् ।
कुर्यात्तु कंटकं शालं याम्यां दिशिमुपाश्रितः ॥३॥

सबके लिये आर्तिनाशक मन्त्र अभिचार विधि को सुनकर मन्त्रवित् साधक अधःशूल, क्रूर ग्रह, महाबलशाली महामारी कुलोत्पन्न भैरव देव को उत्सारित करते हैं और यम की जिह्वारूप मृत्युस्वरूप अघोर को युक्त करते हैं। महारौद्र का आह्वान शत्रुपक्ष के लिये भयंकर है। दक्षिण दिशा का आश्रय लेकर कण्टक का शाल (चटाई) तैयार करे।।१-३।।

नैर्ऋत्यां वा श्मशाने वा त्रिकोणज्ञान्तमालिखेत् ।
श्मशाने केशसंच्छन्ने कंटकैः सर्वतोवृते ॥४॥
द्वारं च कल्पयेत्तत्र कंटकैः कल्पितार्गलम् ।
अन्त्रमालासमायुक्तं याम्यां दिशिमुपाश्रितम् ॥५॥
कपालैर्बहुभिश्चैव परितः परिवेष्टयेत् ।
अग्न्यागारं त्रिकोणं च कल्पयेत्तत्र साधकः ॥६॥

नैर्ऋत्य कोण में अथवा श्मशान में त्रिकोण पद्म आदि का अंकन करे। केश आच्छादित श्मशान में सब दिशाओं में कण्टक द्वारा आवृत स्थान में द्वार की कल्पना करे तथा कण्टक द्वारा ही अर्गला तैयार करे। इसे दक्षिण दिशा की ओर अन्त्रमाला से युक्त होना चाहिये। नरकपाल से चारो दिशाओं को बाँधे (चारो दिशाओं में नर कपाल से वेष्टन करे)। साधक वहाँ अग्नि आगार तथा त्रिकोण की कल्पना करे।।४-६।।

रुधिराक्तेन सूत्रेण परितः परिवेष्टयेत् ।
श्मशानभस्मना स्नातः कृष्णवासा जितेन्द्रियः ॥७॥
रक्तोष्णीषधरो मन्त्री रक्तयज्ञोपवीतवान् ।
संक्रुद्ध्य भ्रुकुटी वक्त्रो रक्तचन्दनशूलधृक् ॥८॥

रक्तलिप्त सूत्र से चतुर्दिक वेष्टन करना चाहिये श्मशान भस्म से स्नान करके कृष्ण (काला) वर्ण वस्त्र पहनकर जितेन्द्रिय साधक लाल रंग की पगड़ी तथा लाल यज्ञोपवीत धारण करके क्रुद्ध होकर भृकुटी बद्ध मुख करके रक्त चन्दन से लिप्त शूल धारण करे।।७-८।।

पुष्यं लोहमयं चापि धारयेच्छूलमुत्तमम्।
खदिरं रुधिराक्तं वा धारयेच्चाभिचारवान्॥९॥

तदनन्तर पुष्य तथा लोहमय उत्तम शूल धारण करके अथवा अभिचारयुक्त होकर रुधिराक्त खदिर धारण करे।।९।।

अग्न्यागारस्य मध्ये तु प्रतिमाङ्कारयेद्बुधः।
शत्रोर्मूत्रपुरीषेण रुधिरेणान्त्रपांशुना॥१०॥
पादपांशुं समालोड्य मृद्भस्मासानकी तथा।
बल्मीकसम्भवां चापि गृहीत्वा शत्रुमालिखेत्॥११॥

बुद्धिमान व्यक्ति अग्निगृह के मध्य में शत्रु की प्रतिमा स्थापित करे तथा उसे शत्रु की मूत्रविष्ठा-रक्त तथा अन्त्र (आँत) पांशु से उसे लिप्त करे। ऐसे ही दीमक के बाबी की मिट्टी तथा भस्म से शत्रु को अंकित करे।।१०-११।।

खादिरैः कीलकैस्तस्य ऊर्ध्वकेशमधोमुखम्।
पाशेन वेष्टयित्वा तु शत्रोः प्राणान्निकृन्तयेत्॥१२॥

खैर की लकड़ी की कील से शत्रु के ऊर्ध्वकेश तथा नीचे किया मुख पाश द्वारा वेष्टित करके शत्रु का प्राण-हरण करे।।१२।।

कुर्याच्छूलेन भिन्नं तु पादयोर्मूर्ध्नि विद्विषम्।
आयसस्रुवमादाय सोमं कुर्याद्विचक्षणः॥१३॥

शत्रु (की प्रतिमा) का पादद्वय एवं मस्तक शूल से छिन्न करे। विचक्षण व्यक्ति लोहे के स्रुव द्वारा होम करे।।१३।।

अथ चेद्दशधा प्रोक्तमभिचारविधाविह।
कृष्णच्छागोष्ट्रमातङ्गशलभानां च शोणितम्॥१४॥
विषं च मलिनं तैलं चातुर्वर्णस्य शोणितम्।
वामहस्ते स्रुवं कृत्वा दक्षिणाभिमुखः स्थितः॥१५॥
त्रिसंध्यं जुहुयात्क्रुद्धः फट्कारेणैव मन्त्रवित्।
कपालत्रयमारूढः द्वयोः पादौ निवेशयेत्॥१६॥

तदनन्तर दश प्रकार की आभिचारिक विधि कही गयी है। कृष्णवर्ण का बकरा, ऊँट, हस्ती तथा शलभ का रक्त एवं विष, मलिन तैल तथा चार वर्ण के मनुष्य का रक्त, वाम

हाथ में स्रुवा लेकर दक्षिण की ओर मुख करके खड़ा हो मन्त्रज्ञ साधक क्रुद्ध होकर 'फट्' कहते हुये त्रिसन्ध्या (प्रातः-मध्याह्न-सायं) होम करे। तीन कपालों (मनुष्य की खोपड़ी) पर आरूढ़ होकर दोनों पैरों को (शत्रु की प्रतिमा) उसके पैरों पर रखे।।१४-१६।।

ऊर्ध्वं शुक्लतरूणां च समिद्भिर्जुहुयान्नरः।
खदिरै रुधिराक्तैर्वा तथा निम्बमयैरपि ।।१७।।
अन्येन तु यथोक्तेन अव्यक्तं होमयेद् बुधः।
कुर्यात्प्रकुपितो होमं यावत्क्रोधो न नश्यति ।।१८।।
कल्पोक्तमभिचारं तु कुर्यात्सिद्धार्थमात्मनः।
सिद्धिस्त्रयो दशविधा अभिचारेण मन्त्रिणाम् ।।१९।।
शत्रोर्देशपरित्यागो व्याधिरर्थविनाशनम्।
उन्मत्तताऽन्धता चैव तथा चैवाङ्गहीनता ।।२०।।
वधो बन्धो नृपक्रोधोऽकस्माच्चापि धनक्षयः।
प्रयातं याचितं चापि आरण्यं च त्रयोदश ।।२१।।

ऊर्ध्व शुक्ल वृक्ष के काष्ठ से होम करना चाहिये। रक्त लिप्त खैर अथवा नीम की लकड़ी के द्वारा भी होम हो सकता है। यथाविधि अन्य काष्ठ द्वारा भी पण्डित व्यक्ति अव्याहत होम कर सकते हैं। अपनी सिद्धि के लिये कल्पोक्त अभिचार करना उचित है। मन्त्रज्ञ साधक के अभिचार द्वारा सिद्धि तेरह प्रकार की है। शत्रु देश-परित्याग, व्याधि, अर्थनाश, उन्मत्तता, अन्धता, अंगहीनता, वध, बन्धन, नृपक्रोध, अकस्मात् धनक्षय, परलोक-गमन, याच्ञा वृत्ति तथा वनगमन।।१७-२१।।

आभिर्निर्मलितो दीप्तः प्रोक्षितो विधिना पुनः।
तत्त्वेनाप्यायितश्चैव कथं मन्त्रो न सिद्ध्यति ।।२२।।

आभिचारिक शब्द का अर्थ है—आभि = विमुक्त करना, दीप्त होना। उसमें विधिपूर्वक प्रोक्षित एवं तत्त्व द्वारा आप्यायित होने पर मन्त्र क्यों सिद्ध नहीं होगा?।।२२।।

असिद्धौ तु पुरो दण्डः स्वमन्त्राताडनं भवेत्।
अभिवार्य परं गच्छन् करं हन्यात्तथान्तकी ।।२३।।
ततो निकृन्तप्राणोऽसौ देहमुत्सृजति क्षणात्।
विधिना द्रव्यघटने क्रोधार्तः शत्रुपीडितः ।।२४।।
प्रतिलोमेन युञ्जीत घातके प्राणसंयुतः।
तत्क्षणाद् घातयेत्सर्वान् सेन्द्रब्रह्मपुरस्सरान् ।।२५।।

मन्त्र असिद्ध होने पर सर्वप्रथम कर्त्तव्य है उसमें स्वमन्त्र से ताड़ना। विनाशकारी अन्य को बाधा देने के लिये शत्रु (प्रतिमा) का हस्तच्छेदन करे। तदनन्तर शत्रु निष्प्राण होकर देहत्याग करेगा। यथाविधि द्रव्यसंग्रह होने पर शत्रुपीड़ित साधक क्रोधित होकर (पुरश्चरण

को) प्रतिलोम द्वारा युक्त करे। इससे तत्क्षण ही साधक इन्द्र, ब्रह्मादि प्रमुख का भी विनाश कर सकता है।।२३-२५।।

आपत्सु योजयेन्मन्त्री यदा संशयितो भवेत्।
शरीरा मानसाश्चैव उपसर्गास्तु कीर्तिता ॥२६॥

जब संशयापन्न हो तब आपत्ति काल में साधक यह सब क्रिया करे। उपसर्ग दो प्रकार का मानसिक एवं शारीरिक कहा गया है।।२६।।

शारीरा व्याधयो ज्ञेया मानसा बहु विस्तराः।
स्त्रीकृत्वेवं त्यजैश्चैव बन्धुमित्रपुरःसरैः ॥२७॥
पीड्यते मन्त्रिणो ह्येते चोपसर्गैः सुदारुणैः।
सिद्धवाक्यमुपेतस्तु मन्त्रहोमपुरस्कृतः ॥२८॥
असंदेहात्तु सिद्ध्यन्ति बुद्ध्या योगाः सुमन्त्रिणः।
स्त्रीलोलास्तु न सिद्ध्यन्ति तथा चार्थविचिन्तकाः ॥२९॥

शारीरिक उपसर्ग व्याधियों को जानना चाहिये। मानसिक अनेक प्रकार के होते हैं। स्त्री लोगों को उपलक्ष्य करके ऐसे बन्धु-मित्र प्रभृति द्वारा किये (कर्तृक) सुदारुण उपसर्गो से साधक पीड़ित हो जाते हैं। सिद्ध वाक्य (उपदेश) प्राप्त करके मन्त्र, होम प्रभृति द्वारा मन्त्रज्ञ निःसंदेह सिद्धि प्राप्त करते हैं। जो स्त्रीलोलुप तथा स्वार्थी होते हैं, उनको सिद्धि नहीं प्राप्त होती।।२७-२९।।

स्त्रीभार्याशूद्रभार्यायां तथान्यासु च संरता।
क्रियालोपी चानुरोधी व्यसनी तृष्णया हतः ॥३०॥

स्त्रीगण, भार्या, शूद्र की भार्या अथवा अन्य स्त्री में जो आसक्त हैं, उनका क्रियालोप हो जाता है। जो अन्य से अनुरोध करते हैं, व्यसनी हैं, तृष्णा से आक्रान्त हैं—ऐसे लोग अग्राह्य हैं। विधानतः ये सभी उपसर्गयुक्त हैं।।३०।।

अग्राह्या मन्त्रिणो ह्येते विधाने ह्युपसर्गिणः।
आचार्ये चातिभक्तश्च तपस्वी च जितेन्द्रियः।
घातयेत्सर्वरोगांश्च बुद्ध्वा ज्ञानं सविस्तरम् ॥३१॥

इति श्रीसाम्बपुराणे मारणाभिचारे चतुःषष्टितमेऽध्याये एकादशं पटलम्

●

जो आचार्य के प्रति भक्तिमान हैं, तपस्वी तथा जितेन्द्रिय हैं, वे सविस्तार ज्ञान प्राप्त करते हैं एवं समस्त रोगों का विनाश करते हैं।।३१।।

श्री साम्बपुराणोक्त चौंसठवें अध्याय का एकादश पटल समाप्त

●

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

(देहगतरोगाणां चिकित्सा)

अथ भेदान् प्रवक्ष्यामि चाङ्गप्रत्यङ्गयोगजान्।
उभयस्यार्थवित्मन्त्री योन्यां बीजेन घातयेत् ॥१॥
बीजस्य चोद्भवत्वाय व्याधयोऽन्यान्यघातिनाम्।
योनिस्थं बीजयोगेन स्थानस्तम्भं विनिर्दिशेत् ॥२॥

तदनन्तर अंग तथा प्रत्यङ्ग के योगजात भेदों को कहूँगा। अंग तथा प्रत्यङ्ग के अर्थ को जानने वाला मन्त्री योनि तथा बीज द्वारा आघात करे। बीज का उद्भव ही व्याधि का नाशक अर्थात् रोग का अन्त करने वाला है। बीजयोग द्वारा योनिस्थ स्थानस्तम्भ का निर्देश करे।।१-२।।

नेत्रयोः श्रवणं पीतं मुखे सिन्दूरवर्णकम्।
बाह्वंसयोश्च हरितमुदरे कृष्णमेव च ॥३॥
गुदशिश्ने विचित्रं तु नीलचित्रं तु जङ्घयोः।
चरणे कुक्कुटं युञ्ज्याद्बलिं माल्यं च सर्वतः ॥४॥

नेत्रद्वय तथा श्रवण में पीत वर्ण, मुख में सिन्दूर वर्ण, बाहु तथा स्कन्धद्वय में हरित् वर्ण, उदर में कृष्ण वर्ण, गुदा तथा शिश्न में विचित्र वर्ण, जङ्घाओं में नील चित्र, चरणों में कुक्कुट वर्ण तथा समस्त स्थान को बलि तथा माला द्वारा युक्त करे।।३-४।।

स्वस्थाने पूजयेत् तज्ज्ञो विपरीतेन नाशयेत्।
न नश्येत यदा व्याधिः स्नेहाहारेण योजितः ॥५॥
निग्रहस्तस्य वै कार्यः शारेण मन्त्रिणा तदा।
कीलयित्वा तु वै तं च योनिस्थं वर्णजैर्दृढम् ॥६॥

तत्तज्ज्ञ जन स्वस्थान में पूजन करे। विपरीत का विनाश करे। स्नेहाहार द्वारा युक्त करने पर भी यदि व्याधि का विनाश न हो, तब मन्त्री 'शार' (?अस्त्र) द्वारा उसका निग्रह करे। योनिस्थ (व्याधि का) वर्णजात द्वारा दृढ़भाव से बन्धन करना चाहिये।।५-६।।

बिल्वं शिरसि वै पुष्यात्कन्दरं वक्त्रनेत्रयोः।
श्रौत्रे तु यास्यकं कीलं विन्यसेदश्मकन्तु वै ॥७॥
शाकजं वक्षसि प्रोक्तं बादरं पृष्ठ एव च।
उदरे च तथा शिग्रुं चन्दनं शिश्नजानुनी ॥८॥
सुरदारुमधःकाये वैतसं चरणे स्मृतम्।
प्रतिस्थाने न्यसेत् कीलं सर्वस्थानेषु मन्त्रवित् ॥९॥

मस्तक का बिल्व से पोषण करे। मुख तथा नेत्रद्वय में कदर, कर्णों में वास्यक प्रस्तर की कील का विन्यास करे। वक्ष में शाकजात (शाक से उत्पन्न) का, पृष्ठ में कूलजात (वादर), उदर में शिग्रु (सहजन) तथा शिश्न एवं जानु में चन्दन का विन्यास करे। निम्न शरीर में देवदारु का, चरण में वैतस का तथा मन्त्रज्ञ साधक सभी स्थान में कील स्थापित करे।।७-९।।

विनाशाय विवक्ताः स्युः श्लेष्मान्तकविभीतकाः।
तथा सहचरश्चैव कीला वै सर्वकर्मणि ॥१०॥
अथवा स्नपयेद्रक्तमावृतिश्चात्र कीलयेत्।
ध्यायेत्तु घातकं रोगे यदिच्छेद् घातनं परम् ॥११॥
अदग्धमवतार्य्यन्तु यदा शान्तिः प्रवर्त्तते।
हतो दावेन तेन स्याद् ब्रह्मापि यदि च स्वयम् ॥१२॥
आकृतिस्तु सदा मांसैः क्रियते विघ्नकारिणः।
सकलस्तस्य परशुः संक्रमे नायकस्य वै ॥१३॥

विनाशार्थ श्लेष्मात्मक तथा विभीतक की लकड़ी देनी होगा। ऐसे सभी कार्य में कीलक सहचर होगा। अथवा रक्त से स्नान कराये। यहाँ आकृति कीलक होगी। रोग में घातक का ध्यान करके उसके विनाश की इच्छा करनी होगी। जब शान्ति हो जाय, तब अदग्ध अवस्था में उतर कर फेंकना होता है। उसके फल से शत्रु दावानल में पड़ जाता है, यदि ब्रह्मा भी शत्रु हों, वे भी। विघ्नकारी की मांस से आकृति बनानी होगा। नायक के संक्रम में समस्त अंश है उसका परशु (?)।।१०-१३।।

संहारं क्रमशो युञ्ज्यात्तथा मांसेन वै बुधः।
योनिबीजविभागेन स्थानस्थानेषु सर्वतः ॥१४॥
सर्वाङ्गगतरोगा हि चिकित्स्याः सर्वतोमुखाः।
संक्रामस्तस्य वै यो हि क्रीडा संमन्त्रिणः स तु ॥१५॥

योनि तथा बीजविभाग द्वारा सभी स्थान में विज्ञ जन मांस द्वारा क्रमशः संहार करे। सर्वाङ्ग-जात रोग की सर्वतोभावेन चिकित्सा करनी चाहिये। उसका जो संक्रमण है, वह मन्त्रज्ञ साधक की क्रीड़ा है।।१४-१५।।

ये ये वै कीलकाः प्रोक्ताः समिधो पिहिता यतः।
चतुर्माल्योपहारेण तेन तस्य चिकित्सितम् ॥१६॥

इति श्रीसाम्बपुराणे देहजातरोगाणां चिकित्सा नाम पञ्चषष्टितमेऽध्याये द्वादशं पटलम्

जिन-जिन कीलक की चर्चा की गयी है, उसे काष्ठ से आबद्ध करे। चार माल्य उपहार से उसकी चिकित्सा की जाती है।।१६।।

श्रीसाम्बपुराण देहजात रोग की चिकित्सा नामक पैंसठवें अध्याय का द्वादश पटल समाप्त

●

षट्षष्टितमोऽध्यायः

(सर्वोपद्रवशान्तये व्रतविधिः)

सामान्यां तु यदा मन्त्री चिकित्सां सार्वलौकिकीम्।
प्रार्थितो वा नृपेन्द्रेण तथा कुर्यादिमं विधिम्॥१॥
व्रतं पूर्वं समुद्दिष्टं नायकानान्तु शान्तये।
शान्तयेऽद्भुतहोमेन सत्वं वापि विनायकम्॥२॥
स्वेन गात्रेण वै नश्येत् साधकः सर्वकर्मणि।
तस्माद् व्रतं तु वै कार्यं सर्वोपद्रवशान्तये॥३॥
अन्यथा हीयते मन्त्रः स्वेन गात्रेण योजयेत्।
श्वेताम्बरधरो मन्त्री श्वेतमाल्यानुलेपनः॥४॥

जब साधक साधारण रूप से सबकी चिकित्सा करे अथवा राजा द्वारा प्रार्थित होकर (चिकित्सा करे) तब इस विधि का पालन करे। नायक की शान्ति के लिये व्रत की कथा पहले ही कही है। भूतहोम द्वारा सत्व तथा विनायक का प्रशमन करना होगा। साधक सब कार्यों में अपने गात्र द्वारा (विघ्न) नाश करे। तदनन्तर समस्त उपद्रव की शान्ति-हेतु व्रत पालन करे। अन्यथा मन्त्र क्षयीभूत होगा। इसलिये अपनी गात्रयोजना करे। साधक श्वेत वस्त्र धारण करके श्वेत माला द्वारा शोभित हो जाय।।१-४।।

जितेन्द्रियः प्रशान्तात्मा काष्ठमौनी सुमन्त्रितः।
शुद्धवर्णां समादाय पत्नीं शुद्धकुलात्मजाम्॥५॥
दशाहन्तु तया सार्धं ब्रह्मचारीव्रतं चरेत्।
दासविभ्रमयोगेन न कुर्यादात्मनः कृतम्॥६॥

जितेन्द्रिय, प्रशमात्मा, काष्ठमौनी संयत होकर शुद्धवर्ण ब्राह्मण शुद्धकुलोत्पन्ना पत्नी लाकर उसके साथ ब्रह्मचर्य व्रत के साथ दस दिन रहे। दास-विभ्रम योग से जो स्वयं करणीय है, ऐसा कुछ न करे।।५-६।।

अतीते दशरात्रे तु द्वितीयां क्षत्रियां तनुम्।
सर्वपीतोपहारेण शृङ्गारैः कृतभूषणः॥७॥
सुमना दृढचित्तश्च दशाहं क्षत्रियापतिः।
वैश्यो गुणसमायुक्तः पीतवस्त्रानुलेपनः॥८॥
दृढचित्तश्चरेन् मन्त्री दशाहं वैश्यगोचरः।
कृष्णवस्त्रोपहारेण कृष्णवर्णान् तु योजयेत्॥९॥

दश रात्रि बीतने पर द्वितीय (दूसरी) क्षत्रिय कन्या लाकर (पत्नीरूप) समस्त पीत वर्ण के उपहार के साथ शृङ्गार से भूषित करके शोभन मनस्क तथा दृढ़ चित्त होकर १० दिन क्षत्रियपति होकर रहे। इसी प्रकार वैश्य गुणयुक्त (वैश्यकन्या को पत्नीरूपा करके) पीत वस्त्र तथा अनुलेपनादि ग्रहण करके दृढ़ चित्त होकर उसके साथ दस दिन विचरण करे। इसी प्रकार दस दिन कृष्णवर्णा (शूद्रा) को (पत्नी बनाकर) कृष्ण वर्णात्मक वस्त्रादि से विभूषित करके दृढ़ हो, उसके साथ रहे।।७-९।।

गणिकां सर्ववर्णां वै पञ्चमं सार्ववर्णिकम्।
कृत्वा व्रतसमाप्तिं तु योनिचक्रं ततो यजेत्॥१०॥

सर्ववर्णमयी गणिका के साथ (यह पञ्चम सार्ववर्णिक है) व्रत समापन करके योनि-चक्र का यजन करे।।१०।।

तत्राभिषिच्य चात्मानं हन्याद्रोगांस्त्वशेषतः।
यावत्कालं व्रतं युञ्ज्यात्तावत्कालं यजेन्नरः॥११॥
अहस्तु पूजयेद् देवं निशायां तु न पूजयेत्।
एतद् व्रतं त्वया प्रोक्तं मन्त्रिणां सिद्धिदं परम्॥१२॥

वहाँ स्वयं को अभिषिक्त करे। निःशेष रूप से रोग का विनाश करे। जब तक व्रतानुष्ठान करना है, तब तक कालयोजन करना चाहिये। दिन में देवपूजन करे, रात्रि में न करे। इस प्रकार यह जो व्रत तुमसे कहा है, वह मन्त्रज्ञ साधक के लिये परम सिद्धि देने वाला है।।११-१२।।

सर्वसिद्धिपरो मन्त्री व्रतमेतत्समाचरेत्।
न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो भवेत्॥१३॥
न तु वाक् चपलश्चैव लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
साधयेत् प्रयतो नित्यमुपसर्गान् निजोद्धरेत्।
हन्तारः सर्वविघ्नानां नरा व्रतपरास्तु ये॥१४॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे सर्वोपद्रवशान्तये व्रतविधिर्नाम षट्षष्टितमेऽध्याये त्रयोदशं पटलम्

●

सर्वचिकित्सा-परायण मन्त्रज्ञ इस व्रत का आचरण करे। हाथ-पैर न हिलाये, नेत्र चालित न करे तथा वाक्य की चञ्चलता भी न करे। स्वल्पाहार तथा जितेन्द्रिय होकर सयत्न नित्य साधन करे तथा उपसर्गों का विनाश करे। इससे व्रतपरायण व्यक्ति के समस्त विघ्नों का विनाश होता है।।१३-१४।।

श्री साम्बपुराणान्तर्गत ज्ञानोत्तर व्रतविधान नामक छियासठवें अध्याय का त्रयोदश पटल समाप्त

●

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

(वेधयोगवर्णनम्)

एतद् व्रतं महापुण्यं चरेदुत्तरसाधने ।
अर्द्धत्वधमयोगे तु पादमेकं तथाधमे ॥१॥
यदुक्तं साधने तस्मिन् पुराकल्पे महौजसा ।
वेधयोगान् प्रवक्ष्यामि दिव्यभौमार्थसाधकान् ॥२॥
सत्त्वं रजस्तमश्चैव तिस्रो वै मन्त्रयोनयः ।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रस्ते वै साध्यास्तु मन्त्रिणः ॥३॥

उत्तर-साधन में महापूजा तथा व्रतानुष्ठान करना चाहिये। अधम योग में अर्ध तथा अधमाधम में एकपाद। पूजाकल्प में उस साधन के विषय में महान् तेजस्वी ने जैसा कहा है, दिव्य तथा भौम प्रयोजन के साधकों के लिये वेधयोग का वर्णन मैं करता हूँ। सत्व, रज तथा तम—ये तीनों मन्त्रयोनि हैं। ब्रह्मा (रजोगुण में), विष्णु (सत्वगुण में) तथा रुद्र (तमोगुण में) साधकों के साध्य हैं।।१-३।।

अर्चायां कामसङ्कल्पश्चाग्निकार्ये यथा पुनः ।
नारी दुःखप्रकृत्यां च लिङ्गे वा सार्वकामिके ॥४॥
चतुर्भुजा भवेत् सा हि नरमाक्रम्य संस्थिता ।
खट्वाङ्गं दक्षिणे तस्याः कपालं वामके करे ॥५॥
चक्रं वरः क्रमाद्धस्ते अर्धा स्याद्दिव्यमानुषैः ।
क्रूरा दन्तांश्च विन्यस्य तेजोराशिपुटानि षट् ॥६॥

अर्चनीय प्रतिमा में यथाभिलषित संकल्प, अग्निकार्य (होम), नारी दुःख प्रकृति में (?) अथवा सार्वकामिक लिङ्ग में साधन करे। वह नारी चतुर्भुजा, महादेव पर संस्थिता, उनके दाहिने हाथ में खट्वाङ्ग तथा बाँयें हाथ में कपाल है। अन्य हस्तद्वय में क्रमशः चक्र तथा वरमुद्रा है। दिव्य मनुष्यमाला से (कपालमाला) शोभित हैं, उससे उनका अर्द्धांग ढका है। क्रूर दन्तों को विन्यस्त करके छः तेजोराशिपुट का विस्तार हो रहा है।।४-६।।

क्रमान् मन्त्रपदं चैकं शिष्टं तस्यैव सम्पुटम् ।
जपित्वा क्रमयोगेन लक्षमन्त्रान् सुसंयतः ॥७॥
व्रतं त्वनन्तरं कार्यं कामं तत्साधकेन तु ।
पासं गुग्गुलुहोमः स्याच्छागमांसेन योजितः ॥८॥
त्रिसंध्यं ताडनं प्रीत्या होमश्चाथमनन्तरम् ।
प्रतिसन्ध्यं सहस्रं तु यावन्मासो विनिर्गतः ॥९॥

क्रम से एक मन्त्र पद है और उसका सम्पुट है शिष्ट (?)। सुसंयत होकर क्रमयोग से एक लाख मन्त्र-जप करना चाहिये। तदनन्तर साधक यथाभिलषित व्रत करे। एक मास पर्यन्त बकरे के मांसयुक्त गुग्गुलु से होम करे। प्रीतिपूर्वक तीन सन्ध्या ताड़न, तदनन्तर यह होम करे। प्रतिसन्ध्या १००० होम करे जब तक १ मास पूर्ण न हो जाय।।७-९।।

एवं संसाधितो मन्त्रः कामदस्तु सदा भवेत्।
तन्त्रज्ञः साधयेदेवमथवा मन्त्रवित्तमः ॥१०॥

इस प्रकार का मन्त्र-साधन समस्त कामना पूर्ण करता है। तन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार साधन करे अथवा मन्त्रज्ञों में से श्रेष्ठ व्यक्ति साधन करे।।१०।।

सुसहायः प्रसन्नात्मा नित्ययुक्तश्च सात्त्विकः।
मोहादारभते यस्तु साधनं वेधवर्जितः ॥११॥
कृत्या भवति वै सा हि देवता हीनकर्मणि।
विपिने काष्ठमौनी स्यादथवा साधकैर्वदेत् ॥१२॥
समयज्ञैस्ततो विप्रैरन्यथा हीनसाधनः।
यादृशः साधको ज्ञेयः सहायस्तस्य तादृशः ॥१३॥

उपयुक्त सहायक के साथ प्रसन्न अन्तःकरण से नित्ययुक्त सात्त्विक साधक साधन करे। जो वेधवर्द्धित होकर मोह के कारण साधन प्रारम्भ करते हैं, देवताहीन कर्म उसके लिये अनिष्ट-कारिणी हो जाते हैं। वन में काष्ठमौनी हो अथवा समान याज्ञिक ब्राह्मण साधकों के साथ ही वार्त्ता करे। अन्यथा वह हीन साधन होगा। उसका सहायक भी ऐसा ही होगा।।११-१३।।

तत्त्वदृष्टेन योगेन साध्यं मन्त्री समारभेत्।
तपस्वी च जितात्मा च नित्यभक्तो महेश्वरे ॥१४॥
एवंविधस्तु वै मन्त्री काले यो मृत्युमाप्नुयात्।
अनन्तास्तस्य वै लोका इति मन्त्रव्यवस्थितिः ॥१५॥

तत्त्वदृष्ट योग द्वारा साधक साधन प्रारम्भ करे। वह मननशील साधक तेजस्वी हो, जितात्मा तथा महेश्वर के प्रति भक्तियुक्त हो। ऐसा साधक पूर्ण परिणत काल में (पूर्णायु में) मृत्यु को प्राप्त होता है। उसे अनन्त लोक मिलता है। यही मन्त्र की व्यवस्था है।।१४-१५।।

पुण्यात्मा सुकृते स्थाने राजा वा सार्वभौमिकः।
विद्या सिद्धा भवन्त्येते साधकास्तु महीतले ॥१६॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे वेधयोगवर्णनं नाम सप्तषष्टितमेऽध्याये चतुर्दशं पटलम्

साधक एक पृथ्वी पर (किसी एक लोक में) पुण्यवान् व्यक्ति के गृह में जन्म लेकर अथवा सार्वभौम राजा के घर में जन्म लेकर विद्यासिद्ध होता है।।१६।।

श्रीसाम्बपुराणान्तर्गत ज्ञानोत्तर वेधयोग वर्णननामक सड़सठवें अध्याय का चौदहवाँ पटल समाप्त

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

(सर्वसामान्यसाधनम्)

साधनं संप्रवक्ष्यामि यथा सिद्ध्यन्ति साधकाः।
वेधयोगांश्च विमलान् नानासिद्धिफलप्रदान् ॥१॥
षाण्मासिकं तु वै योज्यं पुरश्चरणमादिशेत्।
शाकादिना विधानेन जलैर्वापि च शोधनम् ॥२॥
ध्यायेच्च प्रणवं पश्चात् सहस्रं शतषड्गुणम्।
आयच्छन्न तु सम्भ्रान्तः पूर्वेणापूर्णचेतसा ॥३॥
शुद्धकायस्ततो मन्त्री कृत्वा वासगृहं ततः।
तस्मिन् संस्थापयेद् देवं विधिना शास्त्रचोदितम् ॥४॥

जिससे साधकों को सिद्धि प्राप्त होती है, उन साधनों की कथा कहूँगा। यह निर्मल, वेधयोग्य तथा नाना सिद्धिदायिनी है। छः मास पुरश्चरण करे। शाकादि विधान द्वारा अथवा केवल जल द्वारा शोधन करे। प्रणव का ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर छः सौ हजार जप करना चाहिये। जल्दबाजी अथवा असन्तुष्ट मन से जप कभी न करे। मननशील साधक देहशुद्धि करके निवास का गृह निश्चित करे और उस गृह में यथाशास्त्र विधान से देव-स्थापना करनी चाहिये॥१-४॥

विद्याङ्गानि त्वरिष्टानि स्वमन्त्रं विधिना क्रमात्।
सहस्रदशपर्यायमेवैकं परिवर्त्तयेत् ॥५॥
ततो मन्त्रं समाधाय ईप्सितं मनसः शुभम्।
आप्यायितुं विरक्तं च दीपितैः शास्त्रतः क्रमात् ॥६॥

क्रमशः यथाविधि विद्याङ्ग, अरिष्टसमूह तथा अपना मन्त्र पर्याय क्रम से दस हजार जपे। तदनन्तर मन में ईप्सित मन्त्र को सम्यक् रूप से धारण करे और यथाशास्त्र आप्यायित, विरक्त तथा दीपित करे॥५-६॥

जपान्ते तु व्रतं योज्यं व्रतान्तेऽपि च साधनम्।
अतस्तान् मण्डले योगः साध्यमन्त्रस्य साधने ॥७॥
प्रोक्ताः क्रमेण विधयः सर्वमन्त्रानुसारिणः।
असिध्यमेध्यमायोज्यं कृते वा व्यञ्जनादिके ॥८॥

जपान्त में व्रत करना चाहिये। व्रत के पश्चात् भी साधन किया जाता है। साध्य मन्त्र के साधन के अन्त में मण्डल में योग करना चाहिये। सभी मन्त्र के अनुसार क्रमशः विधि का वर्णन किया गया। व्यञ्जनादि का योग करने से मन्त्र की असिद्धि होती है। अमेध्य युक्त होता है(?)।।७-८।।

तन्त्रोक्तं वेथमादध्याद् स्वमन्त्राकारमेव च।
साधयेदथ तन्त्रज्ञो यज्ञस्य नवसः क्रियात्।।९।।

अपने मन्त्र के अनुसार तन्त्रोक्त वेध को ग्रहण करे। तदनन्तर तन्त्रज्ञ व्यक्ति यज्ञ का साधन करे।।९।।

होमान्ते ह्यग्निकुण्डायां चोदितो विधिनोत्थितः।
नरो न सिद्धिमान् यः स्यान्मन्त्ररूपी स दृश्यते।।१०।।
चलत्यपि तथा मन्त्रं मन्यन्ते परिचारिकाः।
उद्यताश्च महाघोरा लक्ष्यन्ते मन्त्रिणः परे।।११।।

अब विधिवत् उठकर होमान्त में अग्निकुण्ड का चालन करने से केवल लोक में ही सिद्धि नहीं मिलती, अपितु जो मन्त्ररूपी (देवता) हैं, वे भी दृश्यमान होते हैं।।१०-११।।

लक्षयेद्यदि रूपेण शास्त्रस्योक्तस्य लक्षितम्।
सिद्धमन्त्रं विजानीयादन्यथा तु विनाशकः।।१२।।
उत्थाय यदि मन्त्रेण स्वेनार्थः सम्प्रदृश्यते।
साध्यः स एव विज्ञेयोऽन्यथा घातयते तु तम्।।१३।।

यदि इसे शास्त्रलक्षण के अनुसार स्वरूप में देखा जाय तब इसे मन्त्रसिद्धि कहा जाता है, अन्यथा यह विनाशक है। यदि मन्त्र उत्थित (जाग्रत) होकर अपने अर्थ को प्रकट कर दे तब उसे साध्य कहते हैं, अन्यथा वह मन्त्र साधक का विनाश करता है।।१२-१३।।

पातालदिशि वान्तस्तु क्रमतस्तत्र साधकः।
विद्यासिद्धो तु वै मन्त्री कामाद्वै घोरकं प्रदम्।।१४।।
सिद्धो यः स श्रिया राजा सप्तद्वीपाधिपो बली।
भुक्त्वा तु पार्थिवान् भोगान् शिवं याति तनुक्षये।।१५।।

पाताल (?) की ओर अथवा अन्तःकरण में क्रमशः साधक विद्यासिद्धि के विषय में कामना करे। विद्यासिद्धि से वह·····(कामाद्वै घोरकं प्रदम् का कोई तात्पर्य ही नहीं है। प्रतीत होता है कि यहाँ कुछ पंक्तियाँ लुप्त हैं)। जो सिद्ध हो जाते हैं, वे ऐश्वर्य के साथ ही बलवान् सप्तद्वीप के अधिपति होते हैं। सभी पार्थिव भोगों का भोग करके देह के अन्त होने के पश्चात् शिवलोक प्राप्त करते हैं।।१४-१५।।

एतास्तु सिद्धयः प्रोक्ता उत्तमाः सर्वकामदाः ।
तदर्द्धा मध्यमा ज्ञेयाः कनीयस्योद्‌र्ध्वतोऽप्यतः ॥१६॥

इस प्रकार सभी कामनाओं की उत्तम सिद्धि की बातें कही गयीं। इससे आधी मिलने पर मध्यम तथा आधे से कम मिलने पर कनिष्ठ सिद्धि कही गयी है।।१६।।

स स कामयति सिद्धो ह्यन्यस्मिन्सिद्धिमिच्छति ।
सहायैर्गुग्गुलुयोगैः सिद्धो ध्यानी ततोऽन्यथा ॥१७॥

साधक एक विषय में सिद्ध होकर अन्य विषय की सिद्धि चाहने लगता है। गुग्गुलु के योग से ध्यानी साधक सिद्ध हो जाता है॥१७॥

भ्रष्टराज्यो नरो देवो यदि स्यात्सिद्धिशोधिते ।
असिद्धे तु गुणो योगे जपादेर्व्रतिनो नराः ॥१८॥

यह न होने पर वह राज्यभ्रष्ट होता है। सिद्धि से शोधित होकर नर ही देवत्व लाभ कर लेता है। गुणयोग (त्रिगुणयोग) से असिद्ध हो जाने पर व्यक्ति जपादि द्वारा व्रत ग्रहण कर सकता है॥१८॥

सुखं क्रामन्ति वै सिद्धिं संतृप्ता मन्त्रदीपिताः ।
हीनो यो हि नरो योज्यः किं पुनः साधकेक्षते ॥१९॥

मन्त्र द्वारा दीपित साधक तृप्त होकर सुख में सिद्धिलाभ के पथ पर अग्रसर होता है। हीन व्यक्ति भी मन्त्र द्वारा युक्त हो जाते हैं, फिर अन्य साधकों की तो बात ही क्या है।।१९।।

मासं गुग्गुलुहोमस्तु सर्वदा सर्वकर्मसु ।
जपवृद्धिः सदा योज्या संक्रमे मन्त्रिणा सदा ॥२०॥

एक मास-पर्यन्त सभी कर्म में गुग्गुलु का होम करना चाहिये। मन्त्री साधक सर्वदा जप-वृद्धि करता रहे॥२०॥

सङ्कल्पक्रमणं युज्यान्नासङ्कल्पस्तु सिद्ध्यति ।
सङ्कल्पं तु ततः कृत्वा साध्यं मन्त्री तु साधयेत् ॥२१॥

सभी कार्य में सङ्कल्प करना आवश्यक है। सङ्कल्प के अभाव में सिद्धि नहीं मिलती। अतः सङ्कल्प करके साधक (मन्त्रसाधक) साधार साधन करे॥२१॥

जितेन्द्रियः सत्यवादी दृढचर्यारतः शुचिः ।
मितभुग्मितभाषश्च साधयेत्सिद्धिमुत्तमाम् ॥२२॥

सत्यवादी, इन्द्रों को जीतने वाला, दृढ़ रूप से आचरण में रत, पवित्र, अल्पाहारी तथा वाक् संयमी साधक उत्तम सिद्धि प्राप्त करते हैं॥२२॥

न सम्भाषेत वै शूद्रं प्रमादान् मन्त्रसाधकः ।
अरक्तो रञ्जयेल्लोकान् कामी चेत्स्यादकामुकः ॥२३॥

मन्त्रसाधक प्रमाद के कारण भी कभी शूद्र से वार्त्ता न करे। अनासक्त होकर लोगों का मनोरञ्जन करे तथा (लोगों के) कामी होने पर भी स्वयं अकामुक निस्पृह ही रहे॥२३॥

गूढविद्याव्रतश्चापि प्रमादी स्यात् स साधकः ।
क्रियां च सुदृढां कुर्यान्नविधि चेत्स साधकः ॥२४॥

गूढ़विद्या व्रताचरण में प्रमादी (?) हो जाय, सुदृढ़ क्रिया करे; किन्तु किसी की हिंसा न करे (यहाँ प्रमादी पद उचित नहीं लगता, इसे अप्रमादी होना चाहिये)॥२४॥

यावद् व्रतं तु यः कुर्यात्तस्य सिद्ध्यन्ति लौकिकाः ।
जपित्वा सहितां मासं ततः साध्यं प्रयोजयेत् ॥२५॥

जो इतने दिनों तक व्रत करते हैं, उनके लौकिक कार्य सिद्ध हो जाते हैं। एक मास जप करने के उपरान्त साध्य का प्रयोग करना चाहिये॥२५॥

प्रसूतिं घातकं कृत्वा लवणस्याहुतिं क्रमात् ।
सप्तरात्रं तथा हुत्वा वशे जन्तून् करोति सः ॥२६॥
प्रतिलोमैस्तथा वर्णैः साधको घातकस्य तु ।
शृङ्गवेरविषे हुत्वा घातयेत् सर्वजन्तुकान् ॥२७॥

प्रसूति के घात का (?) समर्पण करके क्रमशः लवण की आहुति देनी चाहिये। सात रात्रि आहुति देने पर साधक सभी प्राणीगण को वश में कर लेता है। घातक के प्रतिलोम (?) वर्ण द्वारा साधक को शृंगवेर के विष की आहुति देनी चाहिये, इससे वह सभी जन्तुओं का विनाश कर सकता है॥२६-२७॥

अव्रती नैव संसिद्धेदजयः साधकः स वै ।
मोहादारभते यस्तु हन्यते स विधानवित् ॥२८॥

जो व्रतानुष्ठान नहीं करते, उन्हें कभी भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती। वह असंयमी है। जो मोहवशात् विधान जाने विना आरम्भ करता है, वह विनष्ट हो जाता है॥२८॥

वेधकामस्तु मन्त्रस्तु यदि रूपं समालिखेत् ।
पूर्वोक्तेन विधानेन त्रिमुखान्तां चतुर्भुजाम् ॥२९॥
अष्टशक्तिपरो चैव दिक्पतीनां च रूपकैः ।
रश्मयस्तु यथार्कस्य तथा मन्त्रस्य ताः स्मृताः ॥३०॥

यदि वेधकामना से मन्त्र का रूप अंकित किया जाय, तब पूर्वोक्त विधानानुसार त्रिमुखान्त चतुर्भुजा का अङ्कन करे। अष्टशक्ति तथा दिक्पाल का रूप, सूर्य की रश्मिसमूह जिस प्रकार से मन्त्र में स्मृत है, उसे अङ्कित करना चाहिये॥२९-३०॥

यथा विष्णुस्तथा रुद्रो वीरभद्रश्च पार्श्वतः।
एते मन्त्रस्य वै योज्याः सर्वकालं च मन्त्रवित्॥३१॥
होमकाले तु मन्त्रस्य जपेन विनियोजयेत्।
शान्तने चापि रोगाणामेष दृष्टो विधिः परः॥३२॥

जैसे विष्णु हैं, उसी प्रकार से रुद्र है। पार्श्व में वीरभद्र रहते हैं। मन्त्रज्ञ व्यक्ति मन्त्र में सर्वदा इसी प्रकार से योग करे। होमकाल में मन्त्र को जपयुक्त करने से (मन्त्रजप द्वारा) रोगों के विनाश की यह श्रेष्ठ विधि है॥३१-३२॥

संशयी तु यदा स स्यात्तदा कुर्यादिमं विधिम्।
साधयेत् कामतो ह्यर्थान् पतिः स्याद् बीजसत्तमः॥३३॥

साधक जब संशयापन्न हो जाय, तब इस विधि का पालन करे। यथाकामना प्रयोजन साधन करे। पति (?) श्रेष्ठ बीज है॥३३॥

राष्ट्रभङ्गनिपाते वा स्थानत्यागे तथा बुधः।
सम्पुटे स्थापयेन्मन्त्रं यावत्कालविपर्ययः॥३४॥
संहारान्तं ततः कृत्वा मध्ये मन्त्रं तु योजयेत्।
पुनः संहारमायोज्य मध्ये बीजेन वेष्टयेत्॥३५॥

राष्ट्रभंग अथवा विपदा के समय, किंवा स्थानत्याग-काल में तत्त्वज्ञ व्यक्ति संपुट मन्त्र स्थापित करे, जब तक कालविपर्यय न हो जाय। तदनन्तर संहार-पर्यन्त करके मध्य में मन्त्र योजित करे। पुनः संहार करे। मध्य में बीज से वेष्टन करे॥३४-३५॥

दशवर्णेन बीजेन स्वङ्गप्रत्यङ्गयोजनम्।
न्यस्तो भवति वै मन्त्रः कालमाकल्पमन्त्रिणाम्॥३६॥
अधस्तात् प्रणवं कृत्वा प्लुतो भवति पादयोः।
पुनः पुनस्तथा हस्ते व्योकारश्चापि वामके॥३७॥
हृदये तु मकारः स्याद् व्योकारः जठरे स्थितः।
पिकारः पृष्ठसंस्थो वै नकारो मुखसंस्थितः॥३८॥
प्रणवं स्थापयेन्मूर्ध्नि स च दृष्टो विधिः परः।
न्यस्तो भवति वै मन्त्रो यावत्कालं तु साधनम्॥३९॥

दशवर्ण बीज द्वारा अंग प्रत्यङ्ग को योजित करना चाहिये। मन्त्र विन्यस्त हो जाने पर मन्त्र साधक के यावत् जीवन के लिये हो जाता है। निम्न में प्रणव करे। पादद्वय में दो प्लुतस्वर हो। ऐसा बारम्बार करते हुये बाँयें हाथ में व्योकार, हृदय में मकार, जठर में व्योकार, पृष्ठ में पिकार, मुख में नकार तथा मस्तक में प्रणव की योजना करनी चाहिये। यह श्रेष्ठ विधि है। जब तक साधन है, तब तक मन्त्र न्यस्त रहता है॥३६-३९॥

विधिरेष तु मन्त्राणां सूक्ष्मो वै सर्वतोमुखः ।
असन्देहेन सिद्धेन विधिगुप्तेन मन्त्रवित् ॥४०॥

सर्वतोभाव से मन्त्र की यही सूक्ष्म विधि है। मन्त्रज्ञ व्यक्ति निःसंदेह विधि को गोपनीय रखकर सिद्धि प्राप्त करता है।।४०।।

ग्रहणे चापि मन्त्रस्य भिन्नकार्याश्च मन्त्रिणः ।
मूलन्तु साधनं युञ्ज्यादाद्यन्तकविधिः क्रमात् ॥४१॥

सूर्य-चन्द्रग्रहण काल में मन्त्र का भिन्न कार्य होगा। मूल मन्त्र से साधन करनी चाहिये। क्रमशः आदि तथा अन्त की विधि युक्त करे।।४१।।

क्रमाद्वा नैव कुर्वन्ति कृतमित्यत्र साधनम् ।
आमन्त्र्य तु विवर्त्तेत तन्त्रयुक्तं तु साधयेत् ॥४२॥

अथवा क्रमशः करे। यह न विचारे कि साधन किया जा रहा है। आमन्त्रण करके विवर्त्तन करना चाहिये। तन्त्रोक्त विधि से साधन करना उचित है।।४२।।

मन्त्रे जपे च ये लग्नास्तथा व्रतविधौ स्थिताः ।
साधनं तु पुनस्तेषां यथाशास्त्रसमागमम् ॥४३॥

मन्त्र तथा जप में इस विधि से जो लग्न रहता है, यथाशास्त्र पुनः उसका साधन होता है।।४३।।

स्वल्पेऽपि साधने युञ्ज्याज्जपव्रतरतैस्तु वै ।
अन्यथा हीयते मन्त्री कर्म वापि निरर्थकम् ॥४४॥

अल्प साधन में भी जप तथा व्रतपरायण होना चाहिये; अन्यथा साधक भ्रष्ट हो जाता है और उसका कर्म भी निरर्थक होता है।।४४।।

मासं साधनयोगेन जपित्वा चापि संहिताम् ।
पञ्चरात्रव्रतं पश्चादसिधारं यथाक्रमम् ॥४५॥

एक मास साधन योग द्वारा संहित होकर जप करना चाहिये। पञ्चरात्र व्रत का अनुष्ठान करे। तदनन्तर यथाक्रमेण असिधार व्रत का पालन करना चाहिये।।४५।।

क्षुद्रान् रोगान् गृहांश्चापि तथा व्याधीनुपद्रवान् ।
इच्छातः साधयेत् सर्वांस्तीक्ष्णव्रतरतो नरः ॥४६॥

तीव्र व्रतरत व्यक्ति क्षुद्र रोग, गृहदोष, व्याधि तथा उपद्रवों का इच्छामात्र से शमन कर सकता है।।४६।।

महातपस्वी च जितेन्द्रियश्च न चान्यभक्तश्च महेश्वरादसौ ।
विद्यासु तत्त्वेषु महास्थितिंश्च प्राप्नोति विद्याधरमुक्तलक्ष्मीम् ॥४७॥

जो महातपस्वी, जितेन्द्रिय है, महेश्वर के ही भक्त हैं, वे विद्या तथा तत्त्वसमूह की महास्थिति का तथा विद्याधरत्व का ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं॥४७॥

दशात्मकं तु तं बुद्ध्वा बीजतत्त्वन्तु कृत्स्नतः ।
नियोगं पदबीजानां बुद्धिसिद्धिं यथोदिताम् ॥४८॥

उसे दशात्मक जान लेने पर समग्र भाव से बीजतत्त्व तथा पदबीज में नियोग होता है। यथोदित बुद्धिसिद्धि प्राप्त होती है॥४८॥

सर्वमन्त्रात्मका देवाः सर्वदेवाः शिवात्मकाः ।
शिवतन्त्रपदैर्बीजैः कालकालकृपादिभिः ।
बुद्ध्या सम्यग्यथान्यायं सिद्धिं चाशु प्रवर्तते ॥४९॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे अष्टषष्टितमेऽध्याये सर्वसामान्यसाधनं नाम पञ्चदशं पटलम्

●

सभी देवगण मन्त्रात्मक हैं। सभी देवता शिवात्मक हैं। शिवोक्त तन्त्रोक्त बीज तथा काल में महादेव की कृपा से बुद्धि की सहकारिता से यथान्याय सिद्धि की शीघ्र प्राप्ति होती है॥४९॥

श्रीसाम्बपुराणान्तर्गत ज्ञानोत्तर अड़सठवें अध्याय में सर्वसामान्य-साधन नामक पन्द्रहवाँ पटल समाप्त

●

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

(तत्त्वमण्डलवर्णनम्)

तत्त्वानुसारेण पथः क्रमशोऽथानुवर्ण्यते ।
शिवलोकं यथा येन प्रविशेद् गृहवद् गृही ॥१॥

तन्त्रानुसार पदों का क्रमशः वर्णन करता हूँ, जिसके द्वारा जैसे गृही घर में प्रवेश करता है, तदनुसार ही साधक शिवलोक (शिवगृह) में प्रवेश करता है॥१॥

गणमण्डलतत्त्वज्ञस्तेषु पापरतः सदा ।
अनेकशोऽभिषिक्तश्च शिववद्गुरुपूजकः ॥२॥

गणमण्डल के तत्त्व को न जानने वाला, उसमें सदा पापरत (?), अनेक बार अभिषिक्त व्यक्ति शिवतुल्य होता है॥२॥

अर्पितः शिवयोनौ च गर्भश्चाम्बिकया धृतः ।
योगेन जनितश्चैव योगात्मा योगसम्भवः ॥३॥

शिवयोनि में अर्पित होकर अम्बिका द्वारा जब गर्भ को धारण किया जाता है तभी योग द्वारा योगात्मा योगसम्भव की उत्पत्ति होती है॥३॥

जातकर्मगुणैर्युक्तः स्नानादिगतकल्मषः ।
कृतरक्षश्च धूपेन सत्यात्मा सत्यसम्भवः ॥४॥

जन्म-कर्म-गुण द्वारा युक्त होकर स्नान से पाप हटता है। धूप से रक्षित होकर सत्यात्मा सत्यसम्भव हो जाता है॥४॥

प्रसृतस्त्रिवृतान्तं च मूर्ध्न्याघ्रातः शिवात्मना ।
कर्तृवत् कृतचूडोऽयं मन्त्रशक्तितनुस्थितः ॥५॥

निर्गत त्रिवृत्तान्त शिवरूप में मस्तक द्वारा आघ्रात होने पर मन्त्रशक्ति का देहस्थित चूड़ाकरण होता है॥५॥

विधिना चोपनीतस्तु मुञ्जाजिनधरः शुचिः ।
देवव्रतधरो मुण्डी जटी वा भैक्ष्यभोजनः ॥६॥

विधिवत् उपवीत धारण करके, मुञ्जा, मृगचर्म धारण करके पवित्र होकर देवता का व्रत पालन करना चाहिये। मस्तक का मुण्डन करके जटाधारी होकर भिक्षालब्ध वस्तु का भोजन करना चाहिये॥६॥

विधिनाऽधीतविद्यश्च सर्वज्ञो बीजवित्तमः ।
कृतात्मा कृतविद्यश्च कृतगोदानदक्षिणः ॥७॥
पाकयज्ञो हविर्यज्ञो सोमयाजी तथैव च ।
शिवमार्गानुसारी च धनवान् योगनिश्चयः ॥८॥

यथाविधि विद्याध्ययन तथा सर्वज्ञता लाभकर श्रेष्ठ बीजविद् कृतात्मा, कृतविद्य को जिन्होंने गोदान दिया है, जो पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ तथा सोमयाग करता है, जो शिवमार्ग का अनुसरण करने वाले हैं, वे धनवान तथा योगविषय के ज्ञाता हो जाते हैं॥७-८॥

यथोक्तज्ञानकर्मस्थो गुणदोषविवर्जितः ।
नास्ति निर्माल्यदोषश्च सर्वतत्त्वेषु सिद्ध्यति ॥९॥

यथोक्त ज्ञान तथा कर्म में अवस्थित व्यक्ति गुण तथा दोष से रहित हो जाते हैं। उनको निर्माल्य दोष भी नहीं होता और वे सर्वतत्त्वों को सिद्ध कर लेते हैं॥९॥

एवंगुणविशिष्टात्मा तपस्वी द्वन्द्ववर्जितः ।
क्रोधादिभिर्वियुक्तश्च समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥१०॥

ऐसे गुणयुक्त तपस्वी द्वन्द्व-वर्जित (शीतोष्ण, सुख-दुःख रहित) क्रोधादि रहित होते हैं। वे लोष्ठ (मिट्टी), प्रस्तर तथा काञ्चन में समदृष्टि होते हैं॥१०॥

आत्मवत् सर्वभूतेषु सर्वमात्मनि पश्यति ।
प्राणायामादिभिः खिन्नस्तुत्या च पुटसंशयः ॥११॥

सभी प्राणियों को आत्मवत् देखते हैं तथा अपनी आत्मा में ही सब कुछ देख लेते हैं। प्राणायाम-प्रभृति द्वारा खिन्न होने पर भी संशयरहित हो जाते हैं॥११॥

विशुद्धाचार आचार्यो भावतः प्रणियुज्यते ।
अनेन क्रमयोगेन विशेद् देवं परं प्रभुम् ॥१२॥

विशुद्ध आचारयुक्त आचार्य भाव से (गुरुभक्ति से) युक्त हो जायँ। इस क्रमयोग द्वारा प्रभु परम देवता में प्रवेश करे॥१२॥

प्रतिकर्तृ प्रतिध्यायी विधिना तत्तदात्मनः ।
ध्यायंश्च शिवमात्मस्थमाचार्यं चापि शेषयेत् ॥१३॥

विधिवत् तत्तदात्मा का एवं आत्मस्थ शिव का ध्यान करके आचार्य का भी ध्यान करना चाहिये॥१३॥

प्रवक्ष्यति प्रयुक्तश्च दीक्षया विमलीकृतः ।
ध्यानयुक्तः सदा गच्छेद् ध्यायिनं परमं पदम् ॥१४॥

दीक्षा से निर्मल होकर सर्वदा ध्यानयुक्त होकर ध्येय परम पद का लाभ करना चाहिये॥१४॥

चरेदुत्पन्नविज्ञानो मुक्तिव्रतमनिन्दितम्।
भूतव्रतादिसिद्ध्यर्थमेकान्ते सर्वतः क्षमी ॥१५॥

विज्ञानोत्पत्ति हो जाने पर अनिन्दित मुक्तिव्रत का आचरण करना चाहिये। सिद्धि के लिये भूतव्रताचरण करके सर्वतोभावेन धैर्यवान् होकर निर्जन में अवस्थान करना चाहिये॥१५॥

सन्त्यज्य सर्वकालात्मप्रधानहितवादिनम्।
मतानि विपरीतानि ध्यायेन्नित्यं सदाशिवम् ॥१६॥

सर्वकालात्म-प्रधान हितवादियों का तथा विपरीत मतसमूह का परित्याग करके नित्य सदाशिव का ध्यान करना चाहिये॥१६॥

निर्निमित्तं निराकारं वाग्विशुद्धं परात्परम्।
प्रमाणं विषयातीतमदृष्टान्तादिलक्षणम् ॥१७॥

वे निर्निमित्त, निराकर, विशुद्ध, परात्पर तत्त्व हैं। वे प्रमाणरूप, विषयातीत एवं दृष्टान्तरहित हैं॥१७॥

ज्योतिषां च परं धाम ज्ञानानां परमं पदम्।
तत्त्वानां परमं तत्त्वं गतीनां परमां गतिम् ॥१८॥

वे ज्योतियों के परम धाम (स्थान), ज्ञानसमूह के परमपद, तत्त्वसमूह के परमतत्त्व तथा गतियों की परमगति हैं॥१८॥

तत्त्वेन तन्तुतत्तत्वं तन्तुता चैव सन्ततम्।
तेनैव तन्तुना नित्यं चिन्तयेत्तत्सुनिष्कलम् ॥१९॥

तत्त्व के द्वारा उनका तन्तुतत्त्वत्व है। ओत-प्रोतभाव से सर्वत्र उनकी सत्ता है। अतः तन्तु के द्वारा उन निष्कल सदाशिव का नित्य प्रति चिन्तन करना चाहिये॥१९॥

क्षुनिकाध्ययोगज्ञो बिन्दुनादतनुस्थितम्।
मुञ्चति क्षिप्रमात्मानं बुद्ध्वा ज्ञानमयं परम् ॥२०॥

क्षुनिका ध्येय योग (?) को जो जानते हैं, वे ज्ञानमय परमतत्त्व को जानते हैं और बिन्दु तथा नाद देहस्थ आत्मा का (देहबोध का) शीघ्र त्याग कर देते हैं॥२०॥

सतस्यास्य योगेन कालेन बहुधा नरः।
विधिना भावशुद्धेन देही बिन्दति सत्पदम् ॥२१॥

बहुधा निरन्तर अभ्यास के फल से देहधारी जीव भावशुद्ध विधान द्वारा सत्पद का लाभ करता है॥२१॥

मुहूर्त्तार्द्धार्द्धमात्रेण मन्त्रबीजकलादिभिः ।
दिवार्द्धं रविभागेन देही बिन्दति तत्क्षणात् ॥२२॥

मुहूर्त काल के आधे के आधे में मन्त्र, बीज तथा कला के द्वारा दिन के अर्द्धभाग रविभाग के द्वारा देही तत्क्षण उस सम्पत्ति को पाता है॥२२॥

प्राकृतानि च तत्त्वानि प्रकृत्या प्रकृतानि वै ।
तीव्रं तत्त्वं परं सूक्ष्मं मन्त्रात्मा पञ्चविंशकम् ॥२३॥
तीव्रस्यात्मनि तत्त्वज्ञो योगवान् योगपण्डितः ।
अचिराल्लभते शान्तिं देही तत्त्वेन यो हितः ॥२४॥

तत्त्वसमूह प्राकृत है। प्रकृति द्वारा (तत्त्वसमूह) प्रस्तुत ये तीव्र तत्त्व परमसूक्ष्म, मन्त्रात्मा २५ है। आत्मा में तीव्रतत्त्व से अभिज्ञ योगयुक्त देही तत्त्वों से युक्त होकर शीघ्र शान्ति लाभ करता है॥२३-२४॥

धारणात्सततं योगो जपध्यानादिदीपितः ।
योजयंस्तु परं योज्यं लिलिहेत्पत्रमव्ययम् ॥२५॥

जप, ध्यानादि से दीप्त होकर निरन्तर धारणा योग से परम योज्य वस्तु में चित्त को युक्त करके अव्यय पत्र का लेहन करे॥२५॥

एवंगुणविशिष्टस्तु योजयेत्तत्त्वमण्डलम् ।
अगुणस्त्वेव योज्यः स्यान्मन्त्री विद्येश्वरादृते ॥२६॥

इति श्रीसाम्बपुराणे तत्त्वमण्डलवर्णनं नाम एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

ऐसा गुणयुक्त होकर तत्त्वमण्डल को युक्त करे। इससे साधक विद्येश्वर से व्यतीत (सगुण से परे) अगुण (निर्गुण) से युक्त हो जाता है॥२६॥

श्रीसाम्बपुराण में तत्त्वमण्डल-वर्णन नामक उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

सप्ततितमोऽध्यायः

(बीजप्रसवः)

उक्तो जपो विधिर्विश्वो बीजं च सह कर्मभिः ।
सहयोज्यं यथा बीजमिच्छते परमेश्वरः ॥१॥
वक्तुमर्हस्य शेषेण भक्ताय सततं प्रभो ।
एवमुक्तः प्रभुर्देवः प्राह तस्मै यथाविधि ॥२॥

हे प्रभो! जप-विधि तथा समस्त कर्म के साथ बीज कहा गया है। परमेश्वर योज्य के साथ जैसे बीज की इच्छा की जाती है, वह भक्त से समग्र रूप से आप द्वारा कहना उचित है। ऐसा कहने पर सूर्यदेव ने साम्ब को यथाविधि बतलाना प्रारम्भ किया॥१-२॥

अक्षराणि दशत्रिंशद्योनिरुक्ता मया पुरा ।
सर्वं वै चोच्यते तस्माद्यथाबीजं प्रसूयते ॥३॥

दस अक्षर तथा ३० योनि की बात मैंने पहले बतलायी है। उसमें सब कुछ कह दिया गया है कि बीज कैसे उत्पन्न होता है॥३॥

त्रीणि चत्वारि च द्वे च त्रीणि पञ्च चतुष्टयम् ।
त्रीणि चत्वारि द्वे त्रीणि पञ्च चैव चतुश्चतुः ॥४॥
तद्द्विकेन समायुक्तो योनिरेषा हि विश्वभुक् ।
संपृक्तैषा प्रसूयेत अक्षरेण दशात्मकम् ॥५॥

३, ४, २, ३, ५ तथा ४, ३, ४, २, ३, ५ एवं १६। दो के द्वारा युक्त होने पर योनि विश्वभुक् होती है। यह मिलित होकर अक्षर के साथ दशात्मक प्रसव करती है॥४-५॥

व्यञ्जनानि स्वरश्चैव परमेष्ठ्यादयस्तथा ।
भूताधिपतयश्चैव तेभ्यो ज्योतिः परं ततः ॥६॥

इति श्रीसाम्बपुराणे बीजप्रसवे संप्ततितमोऽध्यायः

व्यञ्जनसमूह एवं स्वर का, ऐसे ही परमेष्ठि प्रभृति, भूताधिपति गण का तदनन्तर उससे परम ज्योति का प्रकाश होता है॥६॥

श्रीसाम्बपुराण में बीजप्रसव नामक सत्तरवाँ अध्याय समाप्त

●

एकसप्ततितमोऽध्यायः

(बीजप्रसवः)

कृष्णचक्रसमा कालमाग्नीष्टकसमायुतम् ।
बीजानां परमं बीजं शङ्करं परमेश्वरम् ॥१॥
भिन्नं च मार्गमूलेषु विन्यस्तं च सबिन्दुकम् ।
शरीरं देवदेवस्य अक्षरं बीजनिःसृतम् ॥२॥

कृष्णचक्र सदा अग्नीष्टक समायुक्त है। बीजसमूह के परम बीज परमेश्वर शङ्कर हैं। सभी मार्गमूल भिन्न हैं। वे बिन्दु के साथ विन्यस्त हैं। देव-देवीगण का शरीर बीज से उत्पन्न होता है॥१, २॥

धृतं परं स या भक्त्या प्रणवाद्यच्च संहतम् ।
भिन्नं चतुर्भिर्वर्णैश्च सदृशश्चात्मनस्तथा ॥३॥

परम धृत भक्ति द्वारा प्रणव से जो संहत है, वह चारों से भिन्न है(?)। ऐसे ही वर्णसमूह आत्मा के सदृश है॥३॥

अकाराद्यं त्रिकं पूर्वे सुकारात्पूर्वदक्षिणे ।
सम्यग्विज्ञाय मेधावी स्थापयेच्चतुरक्षम् ॥४॥

अकारादि तीन पूर्व में तथा सुकार के पूर्व दक्षिण में है। मेधावी इसे सम्यक्रूपेण जानकर चतुरक्षर की स्थापना करते हैं॥४॥

पश्चिमे तु तकाराद्यं पदयोन्यां तु तत्त्ववित् ।
हृदक्षरं पदविन्मन्त्री विन्यसेद् भूतये शुभम् ॥५॥

पश्चिम में तकारादि अक्षर है, इसे अयोनि में तत्त्वविद् स्थापित करते हैं। परसमूह का ज्ञाता मन्त्री मंगल-हेतु शुभ अक्षर का विन्यास करता है॥५॥

चकाराद्यन्तरे मार्गे पदमक्षरसंज्ञितम्।
आत्मप्रसूतिं प्राणंश्च विन्यसेत्तत्त्ववित् भुवि ॥६॥

चकारादि के मध्य में अक्षरसंज्ञक पद है। आत्मप्रसूति तथा प्राणसमूह का विन्यास तत्त्वज्ञाता पृथिवी में करता है॥६॥

पकारादि यकारान्ता पञ्चिका शक्तिसंज्ञिता ।
शिवधात्री स्थिता मध्यं व्याप्य विश्वं जगत्पतिम् ॥७॥

पकारादि चकारान्त पञ्जिका शक्ति है। शिवधात्री (शिव को धारण करने वाली) विश्व के तथा जगत्पति के मध्य में स्थित रहती है।।७।।

विशिष्टानि ततोऽन्यस्य बिन्दुना भूपतिः क्रमात्।
द्वे द्वे यथा पतत्वं वै चैशान्यां दिशि दक्षिणे ।।८।।

भूपतिक्रम से विन्दु द्वारा विशिष्ट समूह का विन्यास करके ईशान तथा दक्षिण में २-२ करके पातित करे।।८।।

अकारेकारभूताद्या रेफाद्याश्च ततः परम्।
एकाराद्ये तथा द्वे च शन्तर्योत्तरवर्मिकाः ।।९।।

इति श्रीसाम्बपुराणे बीजप्रसवे एकसप्ततितमोऽध्यायः

●

अकार, ईकार, भूतादि का, तदनन्तर रेफादि एवं एकाराद्य दो शन्तर्योत्तर (?) वर्म होगा।।९।।

श्रीसाम्बपुराण में बीजप्रसव नामक इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

●

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

(वर्णनाशविधिः)

वर्णनाशविधिस्तु स्याद्व्यञ्जनानि यथाक्रमम्।
सिद्धये सर्वरूपाणां प्रथमः पूर्वदक्षिणे ॥१॥
द्वितीयं नैर्ऋते स्थाप्यः तृतीयो वायुदैवते।
चतुर्थः सर्वदैवत्ये विन्यासं शृण्वतः परम् ॥२॥

वर्णनाश-विधि कहते हैं। यथाक्रमेण व्यञ्जन वर्णों को शब्दरूप की सिद्धि के विषय में पहले पूर्व दक्षिण में, द्वितीय नैर्ऋत में, तृतीय वायुदैवत में, चतुर्थ सर्वदैवत में श्रेष्ठ विन्यास होगा। अब आगे सुनो॥१-२॥

अन्तस्थाः प्रथमं च स्याद्विन्यस्य दक्षिणे तथा।
शेषास्तथा शकाराद्या विन्यस्य पश्चिमां दिशम् ॥३॥

अन्तःस्थ वर्णों को प्रथमतः तथा वैसे ही दक्षिण में विन्यास करे। अन्त में अवशिष्ट शकारादि का पश्चिम दिशा में विन्यास करे॥३॥

उत्तरस्या च सन्न्यस्याश्चत्वारो मुखनासिकाः।
परतश्च सुरास्तेभ्यो बहिःस्थानं यथाक्रमम् ॥४॥

उत्तर में ष, स नासिकोद्भव, ४ मुख-नासिका, तत्पश्चात् देवगण को यथाक्रम से उनके बाहर स्थान प्रदत्त करे॥४॥

पूर्वेण तु समान्यस्य ह्रस्वदीर्घप्लुतास्त्रयः।
उत्तरेण त्रयस्त्वन्ये तदेवं द्वादशैव तु ॥५॥

पूर्व से ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत—ये तीन, उत्तर में अन्य तीन, सब १२ होंगे॥५॥

ऐकारो नैर्ऋते स्थाप्य उत्तरे वायुदैवतम्।
चक्रमेतद्धि शक्तिस्थं बीजं वै शब्दतां वरम् ॥६॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे वर्णनाशविधिर्नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः

●

नैर्ऋत्य कोण में ऐकार को स्थापित करे। उत्तर में वायु दैवत को स्थापित करे। यह बीजशक्तिस्थ चक्र शब्दों में श्रेष्ठ है॥६॥

श्रीसाम्बपुराण- ज्ञानोत्तर में वर्णनाश- विधि नामक बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

●

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

(बीजप्रसवः)

आद्यन्तं प्रणवं ज्ञेयं योनिबीजं पुनः पुनः ।
न्यसेत् पञ्चाक्षरं भूमौ फलार्थी परमेष्ठिनम् ॥१॥
न्यसेदष्टाक्षरं तस्य बीजमादौ सबिन्दुकम् ।
शेषाः स्युः प्रणवाद्यन्ताः परस्यां दिशि कारणम् ॥२॥

आदि तथा अन्त में प्रणव को जाने, बारम्बार योनिबीज का विन्यास करे। फलार्थी भूमि में परमेष्ठी रूप पञ्चाक्षर का विन्यास करे। अष्टाक्षर विन्यास करे। उसका बीज आदि में बिन्दुयुक्त होगा। शेष के आदि तथा अन्त में प्रणवयुक्त रहेगा। यह है—पश्चिम का कारण॥१-२॥

दक्षिणस्यां परो देवः परस्यां स्यात् सबिन्दुकः ।
ईशान्यादौ सबिन्दुः स्यात्तदन्यानि तु पूर्ववत् ॥३॥
न चाक्षरः परस्यां स्यात् सबिन्दूकारपूर्वकः ।
अष्टौ क्रिया यदन्यानि भूतात्मा नामतस्तु सः ॥४॥

दक्षिण दिशा में परमदेवता हैं। यह बिन्दुयुक्त होंगे। इनके आदि में बिन्दु होगा, अन्य पूर्ववत् होगा। परयोनि में बिन्दु तथा उकारयुक्त कोई अक्षर नहीं होगा। अन्य जो आठ क्रिया हैं, वह भूतात्मा है॥३-४॥

व्योमाद्यन्तं परो देवो विरामे प्रणवस्ततः ।
अक्षराणि च विज्ञेया बीजयोनिस्तु यादृशी ॥५॥

व्योमाद्यन्त परमदेवता हैं। तदनन्तर विराम में प्रणव हैं। जैसा योनिबीज होगा, वैसे ही अक्षर होंगे॥५॥

सुप्रणवादिं च भवेद् व्यापिने मध्यतो भवेत् ।
प्रासूत्याख्यो यदा देवः वर्णा दश च सप्त च ॥६॥

आदि में प्रणव होगा। व्याप्ति होने पर मध्य में होगा। प्रसूति नामक देवता १० तथा ७ (अर्थात् १७) वर्णयुक्त होगा॥६॥

ओंकारावभितो यस्य व्योममध्ये ततः परः ।
विन्यस्य सृष्टिसंज्ञोऽथ देवः पञ्चदशाक्षरः ॥७॥

एषामादिपदैर्न्यस्य देवः सदसदात्मकः ।
ऐशान्यां दशको धाता सृष्टिसंहारसंज्ञितः ॥८॥

इति श्रीसाम्बपुराणे बीजप्रसवे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

●

जिसके ऊपर की ओर २ ओंकार, व्योम मध्य में परयोनि हो। यह सृष्टि नामक पञ्चदशाक्षर देवता है। इनके आदि पद के द्वारा सत् तथा असत् रूप देवता का विन्यास करे। ईशान में १० सृष्टि-संहार नामक धाता रहते हैं॥७-८॥

श्रीसाम्बपुराण में तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

●

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

(बीजप्रसवः)

उत्तरा योनयस्तेषां मन्त्रास्ताभ्यो विनिःसृताः ।
अष्टाक्षरा तु भूत्यन्ते व्योमादि प्रथमा हि सा ॥१॥
शिवयोनिः।

उत्तर में योनि, उनका मन्त्र उससे ही विनिःसृत हुआ है। अष्टाक्षरयुक्त (मन्त्र) भूति के अन्त में है। व्योमादि तथा वह प्रथमा है। इसे शिवयोनि कहते हैं॥१॥

ॐकारादि हकारान्ता अक्षराः परमाः पराः ।
मुक्तये विहिता पुण्या योनिः शब्दवतां मता ॥२॥
परयोनिः।

जिसके आदि में ॐ है, अन्त में 'ह' है, वह श्रेष्ठ परयोनि है। मुक्ति के लिये यह पुण्य योनि विहित है। यह शब्दविद् गण को ईप्सित है। यह पर योनि है॥२॥

दिशि कारणयोनिः स्याद् द्वन्द्ववाहो ह्यनन्तरम् ।
सविंद्वाकारपूर्वा सा भूत्यन्ताश्चतुरक्षराः ॥३॥
कारणयोनिः।

दिक् में कारण योनि होती है। तदनन्तर द्वन्द्व वहनकारी गण हैं। वह बिन्दु के साथ आकार के पूर्व हैं तथा भूत्यन्त चतुरक्षरात्मक है। यह कारणयोनि है॥३॥

क्रियाशक्तिस्तथान्यस्य पञ्चवर्णेयमात्मनः ।
इकारादिस्तकारान्ता भूतये त्रिगुणस्य तु ॥४॥
क्रियायोनिः।

क्रियाशक्ति आत्मा की पञ्चवर्णात्मिका है। इकारादि तकारान्त त्रिगुण के मंगलार्थ है। यह क्रिया योनि है॥४॥

वारुणाभ्यां भूतयोनिः स्यादुकारादिषड़क्षराम् ।
भकारान्ता च सा ज्ञेया भुवनस्य वनस्य तु ॥५॥
भूतयोनिः।

वारुणद्वय से भूतयोनि होती है। वह उकारादि अक्षरद्वययुक्ता है तथा मकारान्त है। इसे भुवनत्रय के पालनार्थ जानना चाहिये। यही है—भूतयोनि॥५॥

सप्ताक्षरपरा चास्याः भूतयोनेरनन्तरम् ।
व्योमादिवायुदेवान्ता वायव्या बीजयोनिका ॥६॥
बीजयोनिः।

इस भूतयोनि के पश्चात् सप्ताक्षर-विशिष्ट, जिसके आदि में व्योम है तथा अन्त में वायुदेव है, वह वायव्या बीजयोनि है। यही है—बीजयोनि॥६॥

वकारादिमकारान्ता मध्ये व्योमसमीरणात् ।
सृष्टियोनिः परा द्वे च दश चैकाक्षराणि तु ॥७॥
सृष्टियोनिः।

वकार जिसके आदि में है, अन्त में मकार है, मध्य में व्योम तथा वायु है, जिससे सृष्टि योनि उत्पन्न होती है। यह १३ अक्षरों से युक्त है। यह है—सृष्टि योनि॥७॥

संहारो द्वादशास्यां ते प्रणवाद्यन्तदीपितः ।
सर्वस्य वाङ्मयस्यैष संहर्त्ता केवलः प्रभुः ॥८॥
संहारयोनिः।

द्वादश से संहार होता है। उसका आदि एवं अन्त प्रणव से दीपित है। यही है—संहार योनि॥८॥

क्षणपूर्णावथोङ्कारौ द्वारपालौ तु बाह्यतः ।
कुम्भाकृतिरुदग्द्वारं धृतं भूतैश्च सर्वतः ॥९॥
योनयः पार्थिवान्यस्थास्तन्त्रस्य त्रयमादितः ।
पृथ्वी यः पूरयेत् सप्त विभक्तेः प्रणवाष्टकः ॥१०॥
पार्थिवयोनिः।

क्षणपूर्ण दो ओंकार हैं। बाहर वे द्वारपाल हैं। कुम्भाकृति, जलपूर्ण द्वारयुक्त धृतरूप है। वह सभी ओर से प्राणीगण से वेष्टित है। उसकी सभी योनि है—पार्थिव योनि। यह तन्त्र के आदि से ही तीन है। जो पृथिवीरूपा है, जो सप्तविंशति पूर्ण करती है तथा आठ प्रणवयुक्त है। यह है—पार्थिव योनि॥९-१०॥

अक्षराणां च योनिः स्यादादिवर्णा यथाक्रमात् ।
सर्वत्र बीजनं कार्यं बीजिनां प्रणवेन हि ॥११॥
अपां योनिः।

जो अक्षरसमूह की योनि है, यथाक्रमेण आदिवर्ण बीजधारी गण का प्रणव द्वारा सर्वत्र बीजन ही इसका कार्य है। यह है—जलयोनि॥११॥

योनिस्तु तेजसोऽम्भः स्याद् भूतये सर्वदेहिनाम्।
कादयस्त्वग्निवर्णानां प्रभवाय महात्मनाम् ॥१२॥

योनिराग्नेयी।

सभी देहधारीगण के मंगलार्थ तेज की जलरूप (आग्नेयी) योनि है। कादि, अग्निवर्णा है तथा महात्मा गण की सृष्टि के लिये यह योनि है। यह है—आग्नेयी योनि॥१२॥

आकाशादिः गुणाकाराः शब्दाश्च बीजयोनयः।
सृष्टये शब्दरूपाणां कालादिवरताविधिः ॥१३॥

आकाशात्मिकायोनिः।

आकाश गुणयुक्त शब्दसमूह बीजयोनिसमूह शब्दरूप की सृष्टि के लिये कालादि श्रेष्ठ विधि है। यह है—आकाशात्मिका योनि॥१३॥

भूतानां परमां योनिं भकारादि तथा परा।
वाङ्मयस्य च सिद्ध्यर्थं भूतयोनिं विधापयेत् ॥१४॥

भूतसंहारयोनिः।

प्राणिसमूह की परमयोनि तकारादि अपरा है। वाङ्मय की सिद्धि हेतु भूतयोनि का प्रयोग करना चाहिये। यह है—भूतसंहार योनि॥१४॥

द्वादशे ते तु विन्यस्य चत्वारो यमसंज्ञकाः।
विषमं परमं देवं य एवं ध्येयमीश्वरम् ॥१५॥

नपुंसकयोनिः।

द्वारदेश में चार यमसंज्ञक का स्थापन करे तथा इस प्रकार विषम परमदेवता ईश्वर का ध्यान करे। यह है—नपुंसक योनि॥१५॥

विश्वयोनिरतोऽन्यस्याः सर्वज्ञा विश्वसृक्परा।
द्वारपालनमस्कारवर्णा उक्ता ससंज्ञिता ॥१६॥
नमो नमो भवेन् मध्ये तत्त्वस्य प्रणवस्य तु।
एवं दीपितमेतत्तु विश्वसृग् भूतये मतम् ॥१७॥

विश्वयोनिः।

विश्वयोनि है अपर की स्रष्टा। सर्वज्ञ, विश्व सृजन-परायण। नाम के साथ द्वारपाल नमस्कार वर्णसमूह कहे गये हैं। प्रणव तत्त्व के मध्य में नमः नमः शब्द रहता है। इस प्रकार से दीपित होकर विश्वसृष्टि के मंगलार्थ पूजित होती है। यह है विश्वयोनि॥१६-१७॥

परमं कारणं चैव क्रियाभूतात्मना सह।
बीजयोनिश्च सृष्टिश्च संहारश्चाष्टमः पुनः ॥१८॥

बीजयोनि परम कारण है तथा भूतात्मा के साथ क्रियारूप, सृष्टिरूप और अष्टम संहार, रूप है॥१८॥

विधानं देवदेवस्य मनसाप्यथ कीर्त्तयेत्।
प्रविशेत् परमं देवं विमुक्तः सर्वबन्धनैः ॥१९॥

देवदेव (सूर्यदेव) के विधान का मन ही मन स्मरण रखना चाहिये। इससे समस्त बन्धनों से मुक्ति मिलती है तथा परमदेव की प्राप्ति होती है॥१९॥

एवमेव सदा देवः कृत्स्नस्य जगतो गुरुः।
पूज्यो ध्येयस्तथेज्यश्च विद्वद्भिः परमार्थकः ॥२०॥

इति श्रीसाम्बपुराणे बीजप्रसवो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

●

इस प्रकार से सूर्यदेव सर्वदा समस्त जगत् के गुरु हैं। वे विद्वद् गण द्वारा यथार्थतः पूज्य हैं। ध्येय तथा स्तुत हुये हैं॥२०॥

श्रीसाम्बपुराण में बीजप्रसव नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

●

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

(बीजप्रसवः)

उक्तं तद्योनिबीजं च साङ्कुरं प्रसवं महत्।
तत्पुण्यफलदं मह्यं मुक्तिदं सर्वदेहिनाम् ॥१॥

यह योनिबीज की कथा अंकुर तथा महत् की उत्पत्ति के साथ कही गयी, जो हमारे लिये पुण्यप्रद तथा फलप्रद है एवं सभी देहधारियों को मुक्ति देने वाली है॥१॥

पूर्वस्यां संशयश्चैवं दीप्तायामुच्यतां पुनः।
तं विधिं संशयं देव भक्तः स्यामहम्भास्करेः ॥२॥

पूर्व में जो संशय था, दीप्त सूर्य के सम्बन्ध में उस संशय को दूर करिये। हे देव! वह विधि कहिये, जिससे मैं दुर्लभ भक्त हो जाऊँ॥२॥

श्रुत्वा विज्ञापनं तस्मै प्रोवाच विधिवत् प्रभुः।
समयादि यथातत्त्वं दीक्षां सम्यक्चतुर्विधाम् ॥३॥
परीक्षिताय भक्ताय सुश्रूषणरताय च।
तपस्विने विनीताय क्रोधादिरहिताय च ॥४॥

उनका निवेदन सुनकर प्रभु सूर्यदेव ने यथाविधि समयादि यथार्थ तत्त्व एवं सम्यक् चतुर्विध दीक्षा की बातें कहीं; क्योंकि साम्ब परीक्षित भक्त थे, वे शुश्रूषा में रत, तपस्वी, विनीत तथा क्रोधादि से रहित थे॥३-४॥

पूजयित्वाथ देवेशं प्रागुक्तेन विधानतः।
आवाहयेत्ततस्तस्मिन् भूतयोनिदशात्मिकाम् ॥५॥

सूर्यदेव कहते हैं—पूर्वोक्त विधान के अनुसार देवाधिपति सूर्यदेव की पूजा करे। उनमें दशात्मिका भूतयोनि का आवाहन करे॥५॥

दृष्ट्वा च सर्वभूतैश्च श्मशाने सकलीकृतम्।
सप्तकृत्वोऽथ संपात्य दर्भपुञ्जे स्थितस्ततः ॥६॥
अन्यत्र स्थापितं शिष्यमाज्याद्यैश्च सुपूजितम्।
पावयेत्तत्रिरूर्ध्वं वै नार्यैः पिञ्जूलकैरधः ॥७॥
आहुतीर्जुर्हुयाद्भूतैः सर्वैरेव यथाक्रमम्।
सम्पातान् पातयेच्छिष्यो मुक्तदोषस्तथा भवेत् ॥८॥

श्मशान में सर्वभूतों द्वारा सकलीकृत देखे। दर्भपुञ्ज (कुश आदि के गुच्छे के ऊपर) ७ भाग में स्थापित करे। वहाँ से अन्यत्र स्थापित घृतादि से पूजित शिष्य को तीन बार पवित्र कराये। नाभि के ऊपर तथा पञ्जर के नीचे यथाक्रमेण सभी प्राणियों के लिये आहुति देनी चाहिये। शिष्य में सम्पात पातन करे। इससे वह दोषरहित हो जाता है।।६-८।।

सकलीकृत्य पश्चाच्च यजेच्चापि पुनः शुचिः ।
संस्थाप्य दक्षिणेनाग्नेर्भूतैर्हूत्वा च किल्बिषम् ।।९।।
भस्ममुष्टिं ततस्तस्मिन् दद्यादादाय पावकम् ।
एवं समविनस्तस्य भवेत् संस्कारयोग्यता ।।१०।।

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे बीजप्रसवे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

●

सब एकत्र करके पवित्र होकर पुनः यजन करना चाहिये। अग्नि को दक्षिण में स्थापित करके भूत द्वारा पापों की आहुति देकर उसमें भस्ममुष्टि छोड़कर अग्नि ग्रहण करे। ऐसे नियमपालक में संस्कार-योग्यता होती है।।९-१०।।

श्रीसाम्बपुराण ज्ञानोत्तर में बीजप्रसव नामक पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

●

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

(बीजप्रसवः)

योग्यतामप्यबुद्धस्य संस्कारं गुरुरारभेत्।
भूतस्य पावनेरेव तस्य सम्पूज्य तत्त्वतः ॥१॥
संहारशक्तिमावाह्य विधानेन दशात्मना।
आत्मानं सकलीकृत्य शिष्ये न्यासान् प्रयोजयेत् ॥२॥

शिष्य की योग्यता को भली प्रकार जानकर गुरुदेव संस्कार प्रारम्भ करे। भूतसमूह को पावन करके तत्त्वतः उसका पूजन करना चाहिये। दशात्मक विधान से संहार शक्ति का आवाहन करके आत्मा को एकत्र करके शिष्य का न्यास करे (आत्मा को एकत्र करना अर्थात् विक्षिप्त आत्मभाव का केन्द्रीयकरण)॥१-२॥

कृत्वा पूजादिकां सम्यक् प्रतिमन्त्रं प्रयोजयेत्।
सृष्टन्तु पावकं कर्म यद्यसौ प्रतिपद्यते ॥३॥

पूजादि करके सम्यक् रूप से प्रतिमन्त्र का प्रयोग करना चाहिये। यदि वह प्रतिपाद्य हो तब सृष्ट होकर पावक कर्म करना चाहिये॥३॥

ब्रह्मघ्नं शोधयेद् गोष्ठं दशाहं पापशुद्धये।
अन्येष्वप्सु त्रिरात्रञ्च महासर्गेषु तत्त्ववित् ॥४॥

ब्रह्महत्यारे की शुद्धि हेतु १० दिन वह गोष्ठ (गौशाला) में रहकर शोधन करे। तत्त्वज्ञ व्यक्ति अन्य जल एवं महत् के साथ तीन रात्रि शोधन करे॥४॥

प्रत्येकमाहुतीस्तिस्रो हुत्वा सम्पातकारणम्।
संस्थितो दक्षिणेनाग्नेः क्रमेण लभते गुरुः ॥५॥

प्रत्येक की तीन आहुति देकर अग्नि के दक्षिण से लेकर गुरुक्रम से सम्पात-पारण लाभ करे॥५॥

गुरुणाष्टशतं हुत्वा सम्पात्यास्त्वेकविंशतिः।
सम्पातो मूर्ध्नि शिष्यस्य शिवयोन्यां तथाञ्जलिम् ॥६॥
पुष्पस्य मूर्ध्नि दद्याच्च क्रियायोन्याञ्च निःक्षिपेत्।
दर्भे दशात्मना होमस्त्रिकमेतन्मयोदितम् ॥७॥

गुरु १०८ आहुति देकर २१ सम्पात करे। शिष्य के मस्तक में सम्पात देकर शिवयोनि में पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये। तदनन्तर मस्तक में तथा क्रियायोनि में पुष्पाञ्जलि प्रदान करे। दर्भ में दशात्मक विधान से तीन बार होम करे। यह मेरी उक्ति है॥६-७॥

तथा पुंसवनं कृत्वा क्रियायोन्यैश्च मन्त्रिणः।
तथैव तण्डुलैर्जुहुयादाहुतिं त्वेकविंशतिम् ॥८॥
जातकर्म तथैव स्यात्तोयं मूर्ध्नि दशात्मना।
तथा व्याहृतिहोमश्च पानं चास्य मलापहम् ॥९॥

तदनन्तर मन्त्रसाधक क्रियायोनि के द्वारा पुंसवन करे तथा तण्डुल से २१ आहुति प्रदान करे। इस प्रकार से जातकर्म होता है। दशात्मक विधान से मस्तक पर जल देना, व्याहृति होम करना तथा इस जल के द्वारा आचमन मलिनता का नाशक होता है॥८-९॥

हिरण्यगर्भस्योक्तायाः क्रियायोन्यसितं परम्।
हुत्वा प्रशमयेच्चैव मधुना च समायुतम् ॥१०॥
ये चापि शिष्टसंस्काराः प्राशनाद्या व्रतान्ताः।
कृष्णाजिनादिलिङ्गानि दद्यादस्य दशात्मना ॥११॥

हिरण्यगर्भोक्त मन्त्र से क्रिया योनि में मधु से होम करके प्रशमन करना चाहिये। ये सभी शिष्य संस्कार हैं। अन्नप्राशादि व्रतान्त में कृष्णाजिन प्रभृति दशात्म विधि से इस शिष्य को प्रदान करे॥१०-११॥

होमं कारणयोन्यां च कुर्यान्नित्यं समाहितः।
सप्त सप्त तथा हानिं चरेत् सप्त व्रतानि वै ॥१२॥
सम्पातनयनां चाद्यां तथा वै कारणस्य तु।
कर्म वैवाहिकं चैव वररूपाय यज्ञवान् ॥१३॥
यागवांश्च हविर्यज्ञैः सोमपानं यथोच्यते ॥१४॥

समाहित होकर नित्य कारण योनि में होमकार्य उचित है। ७-७ दिन ७ व्रत का आचरण करना चाहिये। कारण का सम्पातनयन प्रदान करे। यज्ञवान व्यक्ति वररूप के उद्देश्य से वैवाहिक कर्म करे। यागयुक्त व्यक्ति हवि से यज्ञ करे। तदनन्तर सोमपान कहा गया है॥१२-१४॥

सोममौदुम्बरे न्यस्तं नमस्ये तं दशात्मना।
दशसम्पातितं पीत्वा ऋतुभिर्युज्यते तदा ॥१५॥

सोम को उदुम्बर काष्ठपात्र में रखकर दशात्मक विधान से उसे नमस्कार करना चाहिये। १० सम्पातित पान करके याग करे॥१५॥

दक्षिणां तद्विदे दद्याद् देवायेनं निवेदयेत्।
गुरुं प्रदक्षिणीकृत्य लब्धानुज्ञो यथाविधिः ॥१६॥
एवं तु संस्कृतो योग्यः सिद्धीनां सर्वतस्ततः।
मृतश्च मोक्षमाप्नोति विशेच्च परमं पदम् ॥१७॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे बीजप्रसवे षट्सप्ततितमोऽध्यायः

●

यज्ञविद् लोगों को दक्षिणा देनी चाहिये। देवता के उद्देश्य से यह निवेदन होता है। गुरुदेव की यथाविधि प्रदक्षिणा करके उनकी अनुमति लेनी चाहिये। ऐसे भाव से संस्कृत होने पर सब दिक् से साधक सिद्धिलाभ के लिये योग्य हो जाता है। उसे मृत्यु के उपरान्त मोक्षलाभ तथा परमपद मिलता है॥१६-१७॥

श्रीसाम्बपुराण ज्ञानोत्तर में बीजप्रसव नामक छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

●

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

(विसर्जनविधिः)

शिवतुल्यत्वमस्य स्यात् पाशच्छेदस्तु येन वै।
तमतो वर्णयिष्यामि संस्कारं क्रमशः परम् ॥१॥

यह संस्कार का शिवतुल्यत्व कहा गया। जैसे शिव द्वारा पाश-छेदन होता है, वैसे ही संस्कार के द्वारा जीवन के बन्धन छिन्न हो जाते हैं। अतः क्रमशः श्रेष्ठ संस्कार का वर्णन करूँगा॥१॥

संस्कृत्य पूर्ववद् धीरो दृष्ट्वा दैवं यथाविधि।
आलिखेन्मण्डलं सम्यग् भूतानां विधिवत्ततः ॥२॥

धीर व्यक्ति पूर्व की तरह संस्कृत होकर यथाविधि देवदर्शन करके सम्यक् रूपेण मण्डल का अंकन करे। तदनन्तर विधिवत् भूतगण के मण्डल का अंकन करे॥२॥

तस्मिन्निवेश्य भूतानां सम्पूज्यैनं यथाविधि।
भूताधिपेन तत्त्वज्ञो मन्त्रपूतजलैस्तु तत् ॥३॥
द्रव्यैस्तु मंगलैश्चैवमभिषिच्य सुपूजितः।
अलङ्कृतं गृहीत्वाथ देवायैनं निवेदयेत् ॥४॥

उस मण्डल में भूतों का निवेश करके यथाविधि पूजन करके तत्त्वज्ञ साधक भूतपति का मन्त्रपूत जल एवं माङ्गलिक द्रव्य से अभिषेक करके पूजा करके इस अलंकृत का देव के उद्देश्य से निवेदन करे॥३-४॥

प्रदक्षिणामतः कृत्वा विज्ञाप्यो विधिवत् प्रभुः।
प्रणम्य विधिवद्धीरः प्रसीदेतिह्यमुं वदेत् ॥५॥
पप्रच्छ शिताम्यस्यादुक्तश्चापि यथासुखम्।
पाशेभ्यो मोक्षयेच्चैनं गुरुत्वं वै प्रसादजम् ॥६॥

तदनन्तर प्रदक्षिणा करके विधिवत् प्रभु को बताये अर्थात् धीर साधक यथाविधि प्रणामोपरान्त 'आप प्रसन्न होईये' यह कहे। यह जिज्ञासा करे। यथासुख से कहे कि गुरु की कृपा से बन्धन से मुक्ति हो रही है॥५-६॥

अथास्य दक्षिणेनाग्नौ सूर्य्ययोन्यां विधानतः।
दत्वा दर्भासनं तत्र उपविश्य सुयन्त्रितम् ॥७॥

यथोक्तं पुरुषं देवं सन्निवेश्य प्रपूज्य च।
विज्ञापयेच्च तस्यार्थं यथानुग्रहवान् भवेत् ॥८॥

तदनन्तर अग्नि के दक्षिण में सूर्ययोनि में विधानतः कुशासन बिछाकर वहाँ संयत होकर बैठ जाय। यथोक्त देवता पुरुष को सन्निवेशित करके पूजा द्वारा निवेदन करे, जिससे अनुग्रह मिले॥७-८॥

आग्नेय्यां दिशि च प्राच्यां पुरुषं सन्निवेश्य च।
आपदं संस्थितैर्मन्त्रैर्जुहुयात्तु शिरः पुमान् ॥९॥

आग्नेय तथा पूर्व की दिशा में सूर्यदेव का सन्निवेश करके आपत्ति में संस्थित मन्त्र द्वारा आहुति देनी चाहिये॥९॥

अभिमन्त्र्य च तं शिष्यं जुहुयाच्च शतं शतम्।
स्वेन स्वेन तु मन्त्रेण सृष्ट्वा येन यथाविधि ॥१०॥

वह शिष्य को अभिमन्त्रित करके अपने-अपने मन्त्र से यथाविधि सृष्टि करे। शत-शत बार आहुति देनी चाहिये॥१०॥

अक्षयेन तु दैवेन सर्वेषामनु मन्त्रिणम्।
जानुतो भूतयोनिः स्याद्वनात्मा धातुना समम् ॥११॥
लिङ्गे प्रसवयोनिश्च प्रतिबीजस्तु विनिःसृता।
नाभौ च भावयोनिः स्याद्बीजमस्य दशात्मकम् ॥१२॥

अक्षय दैव सबकी अनुमन्त्रणा है। जानु तक भूतयोनि होती है। वनात्मा धातु के समान है। लिङ्ग प्रसवयोनि प्रतिवर्न्ति (?) विनिसृत होती है। नाभि में भावयोनि है। इसका बीज है—दशात्मक॥११-१२॥

हृदये परमा योनिर्जाता सा परमेष्ठिनः।
कारणाख्या क्रियायोनिर्बाह्ली चैषा च बीजयेत्॥१३॥

परमेष्ठि के हृदय में परम योनि उत्पन्न होती है। कारण नामक यह क्रिया योनि है। इससे वाल्ही (गन्धर्वविशेष) बीज उत्पन्न होती है॥१३॥

संहारः चक्षुरुर्ध्वं स्यादष्टबीजं प्रकीर्तितम्।
सर्वाश्च जुहुयाद् ध्यायन् साधके चात्र विन्यसेत् ॥१४॥
अङ्गुष्ठेन सपुष्पेण न्यासः सर्वत्र शस्यते।
प्रतिमानं च भस्म स्याद्देयं पात्राधिवासितम् ॥१५॥
विश्वसृक्तर्पणं कुर्यात् साधकस्य च सम्पुटम्।
निवारस्तेन विघ्नानामन्यत्रापि प्रयुज्यते ॥१६॥

संहार चक्षु ऊर्ध्व में होते हैं। उसे अष्टबीज कहा गया है। ध्यान करके सबको आहुति प्रदान करे तथा साधक में उसका विन्यास करे। पुष्प के साथ अंगुष्ठ द्वारा न्यास प्रशंसनीय है। भस्म है—प्रतिमान। उसे पात्राधिवासित करके देना होगा। विश्वस्रष्टा को तर्पण करना उचित है। तथा (यहाँ साधक का सम्पुट है। इसके द्वारा विघ्नों का निवारण होता है, अन्यत्र भी ऐसा प्रयोग करना चाहिये)॥१४-१६॥

देवस्याथ सकाशे तु श्राव्यं तस्यानुशासनम्।
अनुग्राह्यास्त्वया शिष्या यथा शास्त्रमनिन्दिताः ॥१७॥
संयुज्य देववच्चापि गुरुं तद्वत् सगोचरम्।
सर्वं प्रदक्षिणीकृत्य ततो देवं विसर्जयेत् ॥१८॥

इति श्रीसाम्बपुराणे विसर्जनविधिर्नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

●

देवता के सामने उसके अनुशासन को सुनाये तथा अनिन्दित शिष्यों पर अनुग्रह करे। देवता के समान गुरुदेव को देखना चाहिये। सबकी प्रदक्षिणा करे। तदनन्तर देवता का विसर्जन करे॥१७-१८॥

श्री साम्बपुराणोक्त विसर्जनविधि नामक सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

●

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

(संन्यासमार्गः)

सन्न्यासस्य त्वहं मार्गं संवक्ष्ये तत्त्वतः परम्।
समयाद्यं च पाशान्तं कृत्वा तु श्रावणादृते ॥१॥
न च पूजा प्रयोक्तव्या हुत्वा होमं यथाविधि।
हृदये हृदये न्यस्य होमभस्मादि निर्मितम् ॥२॥
स्वयोनौ पातयेदेवं ब्रह्मसूत्रं सकर्मकम्।
जुहुयाद्विश्वसृक्चाग्नौ वाचयेदगृहागतम् ॥३॥
स्वयोनौ यातयेदेवं ब्रह्मसूत्रं सकर्मकम्।
जुहुयाद्विश्वसृगग्नौ वाचयेदगृहागतम् ॥४॥

संन्यास श्रेष्ठ पथ है। उसे अब तत्त्वतः मैं कहूँगा। नियम से लेकर पाशान्त (पाशों के उच्छेद तक) अनुष्ठान क्षरण व्यतीत करे। इसमें पूजा नहीं करना है। यथाविधि होम करके प्रति हृदय में होम-भस्मादि निर्मित वस्तु विन्यस्त करे। स्वयोनि में ऐसे सकर्मक ब्रह्मसूत्र का पालन करना चाहिये। विश्वसृक् अग्नि में होम करे। अब अगृहागत का वर्णन करूँगा। अग्नि की एक आत्मा समस्त भुवन की प्रदक्षिणा करता है, बीज अक्षरों से पुण्य भस्मोदक का पान करे।।१-४।।

अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य भुवनान्यस्य चात्मनि।
पिबेद् भस्मोदकं पुण्यं बीजेनैवाक्षरेण सः ॥५॥
संन्यस्तमिति च क्रमादाचरेच्च व्रतानि च।
प्रदक्षिणमतः कृत्वा देवमग्निं गुरुं तथा ॥६॥
सशिष्यं वपनं कृत्वा त्यजेत् सर्वमतः परम्।
सुखदुःखे समे कृत्वा देवाल्लोकाच्च सर्वतः ॥७॥

सब कुछ का त्याग करता हूँ, ऐसा कहे। व्रतों का पालन करे। तदनन्तर देवता, अग्नि तथा गुरु की प्रदक्षिणा करे। शिष्य के साथ क्षौरकार्य करके सब कुछ का त्याग करे। दैव तथा पार्थिक लोकों से आगत सुख-दुःख में समान भावना रखनी चाहिये।।५-७।।

पूतोदकेन कार्यं वै पाणिपादं चरेच्छनैः।
वर्षासु शून्यमागारं मूलं घृतस्य नाश्रयेत् ॥८॥
मौनी स्यात्तु त्यजेद् देहं ध्यायेच्च हृदयाधिपम्।
देवं दृष्ट्वा गुरुं चापि मनसा पूजयेच्च सः ॥९॥

पवित्र जल में हाथ-पैर धोये। धीरे-धीरे चले। शून्य गृह अथवा वृक्ष के नीचे आश्रय न ले। मौनी होकर हृदयाधिपति का ध्यान करते हुये देहत्याग करे। देवता तथा गुरु को देखकर मन ही मन उनका पूजन करे॥८-९॥

स खल्वावर्त्तयस्त्वेवं शिवं शुद्ध्यत्यसंशयम्।
पुनरावर्त्तिनो न स्युः सर्वतन्त्राधिकारिणः ॥१०॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

●

वह इस प्रकार का मंगल आचरण करके अवश्य शुद्ध हो जाता है। सभी तन्त्रों के अधिकारीगण पुनः जन्म नहीं लेते॥१०॥

श्रीसाम्बपुराणोक्त ज्ञानोत्तर संन्यास मार्ग नामक अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त

●

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

(न्यासादिनिर्वतनम्)

यदा निर्वेदमापन्नो यश्चेच्छापदमन्वगः।
दस्युभिर्निहिते राष्ट्रे शत्रुणा वा बलीयसा ॥१॥
प्रार्थितेऽपि नयेनाथ बलानां सम्भवादपि।
जीर्णो विगतचेष्टो वा सन्न्यासाद्विनिवर्त्तयेत् ॥२॥
अथागत्वाशुभं गोष्ठं संहारं च त्र्यहं जपेत्।
ततः सम्भाष्य योग्यः स्यान्नमस्कारादिपूजनैः ॥३॥
यतः स्नातः शुचिर्भूत्वा देवदेवं प्रणम्य च।
विज्ञापयेत् क्षमस्वेति रक्षां मम निवर्तय ॥४॥

जब निर्वेद प्राप्त होता है अथवा स्वेच्छाकृत भाव से अथवा जब दस्यु तथा बलवान शत्रु से राष्ट्र विपन्न हो जाता है, तब राजा द्वारा प्रार्थना करने पर, बलशालीगण का उद्भव होने पर अथवा स्वयं जीर्ण एवं निश्चेष्ट स्थिति में हो जाने पर संन्यास से लौट आये। तदनन्तर मंगलमय गोष्ठ में आकर तीन दिन संहार मन्त्र का जप करे। तदनन्तर नमस्कारादि पूजन द्वारा सम्भाषण करके योग्य हो जाय। तदनन्तर स्नान करके पवित्र स्थिति में देवदेव सूर्य को प्रणाम करके निवेदन करना चाहिये—'हे देव! क्षमा करिये। मेरी रक्षा करिये'।।१-४।।

बीजयोन्यां समावाह्य पृथिवीं संन्यसेदतः।
न्यसेच्च वरुणं मूर्ध्नि यजेदेवं दशात्मना ॥५॥
संहारशक्तिमावाह्य चात्मन्यासं प्रयोजयेत्।
सकलीकृत्य भूतैश्च तथैतान् जुहुयात्ततः ॥६॥

बीजयोनि में आवाहन करके पृथ्वी का सम्यक् न्यास करे। मस्तक में वरुण का न्यास करे। ऐसे ही दशात्म द्वारा संहार शक्ति का आवाहन करके अंगन्यास करने के अनन्तर भूत-गण द्वारा सकलीकरण (एकत्रीकरण) करे। इसके पश्चात् उनकी आहुति देनी चाहिये।।५-६।।

शेषं तु शतमाभाषिरधिकं तु पिबेत्ततः।
ततः प्रकृतिमापन्नो दीक्षां शक्तिमवाप्नुयात् ॥७॥

पार्थिवः सकलीरग्नौ मन्त्रैर्होम्य शतं घृतम्।
वारुणेन ततो हुत्वा शेषं पानं यथा पुरा ॥८॥
बीजयोन्यां ततः स्तुत्वा पूजां कृत्वा प्रणम्य च।
अनुग्राह्योऽस्मि देवेश कामं सर्वसमृद्धये ॥९॥
पूर्वपक्षं क्षपा उक्ता नित्यं स्यात् समया यथा।
अनेन विधिना न्यासान्निवर्तनमनन्यथा ॥१०॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे एकोनाशीतितमोऽध्यायः

●

अवशिष्ट १०० बार कहे। तदनन्तर उससे अधिक पान (?) करे। तदनन्तर प्रकृतिस्थ होकर दीक्षा की शक्ति प्राप्त करे। पार्थिव मन्त्र द्वारा एकत्र करके अग्नि में घृत से १०० होम करे। तदनन्तर वारुण मन्त्र से आहुति देकर अवशिष्ट का पूर्व के समान पान करे। बीजयोनि द्वारा स्तुति, पूजा तथा प्रणामोपरान्त कहे—'हे देवेश! यथेष्ट सर्व-समृद्धि के लिये मुझपर अनुग्रह करें। पूर्वपक्ष को क्षपा कहा गया है। वह नियमपूर्वक नित्य हो। इस विधानोक्त न्यास से निवर्त्तन होगा, अन्यथा नहीं होगा।।७-१०।।

श्री साम्ब पुराणोक्त ज्ञानोत्तर न्यास में निवर्त्तन नामक उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त

●

अशीतितमोऽध्यायः

(मुक्तिमार्गः)

अथवा संशयापन्नं सद्योमुक्तिं समाचरेत्।
देवं सम्पूज्य सम्यक्च दक्षिणामूर्तिमाश्रितः ॥१॥
अप्यतद्दर्शनाद्धीरः स्थिरचित्तो दृढव्रतः।
स्वहृदि पुरुषं न्यस्य यथापूर्वविधानतः ॥२॥
आचान्तः पुनराचम्य युञ्जन् मन्त्रान् यथाक्रमम्।
वायव्याऽग्निं निवेश्याथ ह्यात्मानं तत्र योजयेत् ॥३॥
ततः संहारदेवेन सृष्टिमाग्नेर्नियोजयेत्।
विशेच्च दीपमापन्नो योनिं भूतेशसंज्ञिताम् ॥४॥

अथवा संन्यासापन्न होकर सद्यः मुक्ति का आचरण करे। दक्षिणामूर्त्ति का आश्रय लेकर देवता का सम्यक् पूजन करे। तदनन्तर उनके दर्शनार्थ धीर व्यक्ति स्थिर चित्त तथा दृढ़व्रत होकर अपने हृदय में पुरुष का विन्यास करके पूर्वोक्त विधान से आचमनोपरान्त पुनः आचमन करे तथा यथाक्रम से मन्त्रों को युक्त करे। वायव्य अग्नि में निवेश करे, वहाँ आत्मा को युक्त करना चाहिये। तदनन्तर संहार देव के साथ सृष्टि को अग्नि से युक्त करे। दीपलाभ करके भूतेश नामक योनि में प्रविष्ट हो जाय।।१-४।।

पापं दहति योनिः स संहारेण प्रचोदितः।
तत्त्वबीजस्य कात्स्थानात्क्षिप्रं विगतकल्मषः ॥५॥
दग्ध्वा भूतेशयोनिं स शिवयोनिं क्रमाद्विशेत्।
ततस्तु चैकसंयुक्तौ वायुना चाचलीकृतौ ॥६॥

संहार के द्वारा प्रचोदित होने से योनिपाप का दहन हो जाता है। तत्त्वबीज में भूमि स्थान से सत्वर पापमुक्ति हो जाती है। तदनन्तर भूतेश योनि को दग्ध करके क्रमशः शिवयोनि में प्रविष्ट हो जाय। तत्पश्चात् एकत्र संयुक्त होकर वायु के द्वारा अचलता में स्थित होना चाहिये।।५-६।।

शिवाग्नी चेरतुश्चैव सर्वभूतक्षयंकरौ।
ततस्तस्मिन् समीभूते हृदि प्रोक्ते ततोऽनले ॥७॥
दहेच्छरीरं सोष्माणि मन्त्राणि परमेष्ठिनः।
असम्भारस्ततो मन्त्री दह्यमानेन चेद् धृदि ॥८॥

शिव तथा अग्नि विचरण करते हैं। वे समस्त प्राणीगण के क्षयकारक हैं। तत्पश्चात् हृदयउसमें मिलित हो जाते हैं। उष्मा शरीर को दग्ध कर देती है। यह परमेष्ठी का ऊष्म मन्त्र है। हृदय दह्यमान हो जाने पर मन्त्री मानरहित हो जाता है।।७-८।।

नात्मना विशयेदस्त्रं विसर्गास्त्रमकारजम्।
द्वाराणां शीर्षरापानां विधाना च व्युपस्थितः ॥९॥

आत्मा द्वारा अस्त्र प्रवेश न कराये (?) विसर्गान्त मकारजात है (इस श्लोक में आगे अर्थ अस्पष्ट है अतः बाकी का अनुवाद करने में असमर्थता है)।।९।।

भित्वा मूर्ध्नि कपालं तु विधिना व्ययमीश्वरम्।
यं प्राप्य न निवर्तेत योगिनः परमं शिवम् ॥१०॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे अशीतितमोऽध्यायः

●

तदनन्तर मार्ग रुद्ध हो जाने पर वह्नि यज्ञशत का विनाश करती है। मस्तक में कपाल भेदन करके अव्यय ईश्वर में प्रवेश मिलता है। जो परा शिव को प्राप्त कर लेते हैं, वे योगी पुनः जन्म ग्रहण चक्र से मुक्त हो जाते हैं।।१०।।

श्री साम्बपुराणोक्त ज्ञानोत्तर में मुक्तिमार्ग नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त

●

एकाशीतितमोऽध्यायः

एतेषां परवान् योगः संवत्सरतनुं स्थितः ।
अष्टानामनुपूर्वेण भिन्नाभिन्नार्थवेदने ॥१॥
प्रतिलोमप्रधिः प्रोक्तो दीपयेत् स्पर्शयेत् क्रमात् ।
चतुर्विंशत्तथा वह्निक्रियायोगेन साधकः ॥२॥
व्यञ्जनं च विसर्गस्थमादावन्त उपाश्रितम् ।
अन्ततो बिन्दुसंयुक्तमाकारेण तदेव तु ॥३॥
द्वाविंशत्यन्तरायुक्ता क्रूरेणैकादशेन च ।
ओंकारं च वषट्कारं यदा नैतददीप्यते ॥४॥

ये सभी श्रेष्ठ योग संवत्सररूप तनु का आश्रय करके आनुपूर्विक आठ भिन्न तथा अभिन्न अर्थ जानने के लिये हैं। प्रतिलोम प्रधि का वर्णन किया गया है। उसे क्रम से दीप्त करे तथा स्पर्श कराये। ऐसा साधक तीन वह्नियों के योग से २४ बार स्पर्श करे। विसर्गस्थ व्यञ्जन आदि में तथा अन्त में उपाश्रित है। शेष बिन्दुसंयुक्त है। आकार के द्वारा भी वही है। २२ में एकादश क्रूरयुक्त हैं। जब वे दीप्त नहीं हुये तब ओंकार तथा वषट्कार प्रकाशित हुये।।१-४।।

अन्तःस्थाश्च शलाकान्ते संयोज्यादुष्मणापि च ।
उत्तमस्पर्शयुक्तानि सुषुम्नान्तर्गतो मतः ॥५॥
क्षुरिका कर्तरी चैका लोका चैकस्तथान्तगाः ।
प्रसवे योजयेदेतत्प्रतिमन्त्रत्रिकं तु वै ॥६॥

शलाकान्त में अन्तःस्थ वर्णों को ऊष्म वर्ण के साथ युक्त करे। उत्तम स्पर्शयुक्त वर्णों को सुषुम्ना के अन्तर्गत जाने। क्षुरिका, कर्त्तरी का लौकिक तथा अन्तग सृष्टि के समय योग करे, किन्तु यह प्रतिमन्त्र ३ करके होगा।।५-६।।

तिस्रस्तिस्रस्तथा चैवमेकैकस्य पृथक्-पृथक् ।
ऊर्द्ध्वं तस्य च वक्त्रादेर्योगः स्यात् प्रतिनिर्मितः ॥७॥
मन्त्राणां साधनैः सूक्ष्माद् द्रव्याणां रक्षतः परः ।
प्राणानां चालने चैव नित्यं योज्याद्यनुक्रमात् ॥८॥

तीन-तीन में इस प्रकार से एक-एक करके पृथक्-पृथक् हैं। उसके ऊर्ध्व में मुखादि का योग प्रतिनिर्मित है। मन्त्रों की साधना से सूक्ष्म से सूक्ष्म द्रव्यों की भी परम रक्षा होती है। प्राणों के चालन में अनुक्रम में नित्य युक्त करे।।७-८।।

आसने क्षुरिकां दत्त्वा ततो मन्त्रं प्रयोजयेत्।
शलाका पूजने योज्या दत्त्वा चैवानुकर्तरी ॥९॥
अग्नेरर्चाविधानेषु दीपने चाभिषेचने।
जपेत्तथा वै ध्यानेषु मन्त्रे च परमो विधिः ॥१०॥
शमी बिल्वपलाशं च तथा दूर्वासितास्तिलाः।
दर्भा सुमनसां चैव गणाः स्याच्छान्तिकर्मणि ॥११॥

आसन में क्षुरिका देकर तब मन्त्रों का प्रयोग करे। शलाका-पूजन में अनुकर्तरी से योग करे। अग्नि के पूजाविधान, दीपन तथा अभिषेक के विषय में जप करना चाहिये। इसी प्रकार ध्यान तथा मन्त्र में भी यह श्रेष्ठ विधि है। शमी, बिल्व, पलाश की लकड़ी, दूर्वा, काला तिल, कुश एवं पुष्प शान्ति कर्म में प्रशस्त हैं।।९-११।।

योज्या क्षीरेण च तथाप्यपुष्पवृक्षयोनयः।
अवृक्षः किंशुको वृक्षो नित्यमेव धनप्रदः ॥१२॥
करवीरो कनकश्चैव कलक्षेत्रं च दायकः।
प्रियङ्गुलोध्रपुष्पं च मृत्योस्तैलविपास्यता ॥१३॥

इन सबों से दुग्ध का योग करना चाहिये। ऐसे ही अपुष्प वृक्षयोनि, अवृक्ष, किंजल्क वृक्ष—ये सब नित्य धन देने वाले हैं। कनेर, कनक (धतूरा), कलक्षेत्र, दायक, प्रियंगु तथा लोध्र के पुष्प की (आहुति द्वारा) मृत्यु से रक्षा हो जाती है।।१२-१३।।

शतपुष्पाणि बीजानि लवणं मांसमेव च।
मल्लिकादिजपैः सर्वैः योज्यः स्याद्धोमकर्मणि ॥१४॥
काकोलूकस्य पक्षाणि येषां द्वे पक्ष सर्वदा।
द्वन्द्वानान्तु तथा तेषां मृगजैर्द्वे वनान्तरम् ॥१५॥
विभीतकः खादिरश्च सहचरो वासकस्तथा।
विद्वेषे तु तथा क्रूरे इत्थं तूच्चाटनेषु च ॥१६॥

शतपुष्प, बीज, नमक, मांस, मल्लिकादि पुष्प, सभी प्रकार का जवापुष्प होमकर्म में युक्त करे। काक तथा उलूक के पंख तथा ऐसे सभी प्राणी, जिनमें परस्पर में द्वेष विपरीतता चलती है, ऐसे मृगज (पशु जैसे—मृग-व्याघ्र), विभीतक एवं खदिर, सहचर तथा वासक का विद्वेष कार्य में व्यवहार करे।।१४-१६।।

उक्ताः स्वल्पविधानेषु परतन्त्रेषु ये च वै।
सर्वे तेनैव सिध्यन्ति विधियुक्तोदितैः परैः ॥१७॥
अस्मा बाह्यबीजा वा योज्याश्च सर्वकर्मणि।
दृष्ट्वा तु विधिना मन्त्रं व्योमस्थं वा महीगतम् ॥१८॥

तत्सर्वं साधयेत्तूर्णं यदुक्तं कल्पकल्पकैः ।
न च शक्तिपरीचारे मन्त्रान्ते क्रमशस्ततः ॥१९॥

यहाँ अल्प विधान का वर्णन किया गया हैं। अन्यान्य तन्त्रों में (विस्तार में) इनका वर्णन है। यथाविधि प्रयुक्त होने पर इनसे सिद्धि मिलती है। रसविहीन अथवा बाह्य बीज सर्वकार्य में युक्त करे। व्योमस्थ अथवा पृथिवीगत मन्त्र का शीघ्र साधन करे; जैसा कि कल्प-कल्प में (विधि में) कहा गया है। किन्तु शक्ति-परिचार में शीघ्रता न करे। मन्त्रान्त में क्रमशः करना होगा।।१७-१९।।

मन्त्रसम्पुटयोगेन साधयेच्च शलाकया ।
शक्रं तु कमले योगस्पर्शैः शक्तिं निरावृत्तम् ॥२०॥

मन्त्रसम्पुट योग में शलाका से साधना करनी चाहिये। इन्द्र की साधना कमल से करे। योग स्पर्श से शक्ति निरावृत हो जाती है।।२०।।

क्षुरिकाकर्त्तरीयुक्ता दक्षिणा निर्वाणमावहेत् ।
अग्निपञ्चकयोगान्ते लिङ्गे वै स्थण्डिलेऽथवा ॥२१॥
लक्षत्रयस्य वै योगात् साधयेत् परमेष्ठिनम् ।
शिलातले तु वै श्रेष्ठः क्रियाकारणसाधकः ॥२२॥

क्षुरिका तथा कर्त्तरीयुक्त दक्षिणा (दक्षिणकाली) निर्वाण प्रदान करती है। पञ्चाग्नि योग के अन्त में लिंग अथवा स्थण्डिल में तीन लाख के योग से (आहुति से) परमेष्ठि-साधन करे। क्रिया करने में साधक श्रेष्ठ शिलातल पर साधना करे।।२१-२२।।

आदित्यस्य निमित्तात्स्यात्साधनमुन्मिलोक्षिकम् ।
भूतेशं निशि वा घोरे वायुभक्षो जलाशितः ॥२३॥
साधयेत् साधनायुक्तो देहे मन्त्री च वै क्षणात् ।
बीजेशवर्या सर्वैव श्मशानभक्ष्यभोजनः ॥२४॥

आदित्य का साधन होता है उन्मीलोक्षिक (उन्मीलित आँखों से) अथवा घोर निशा के समय वायुभक्षी होकर अथवा जल पीकर भूतेश का साधन करे। साधनायुक्त होने पर साधक के शरीर में तत्काल ही समस्त श्रेष्ठ बीजों की विद्यमानता हो जाती है। श्मशान में भक्ष्य भोजन करना चाहिये।।२३-२४।।

अपक्वाशी लब्धप्रभुर्देही देहस्य साधने ।
अशीतसिकता ज्येष्ठे जपेत् सृष्टिं घृतप्लुतः ॥२५॥
जपान्ते दीपयेन्मन्त्री ह्यष्टशान्तिर्यथा शिवः ।
चरित्वा भस्मचर्यञ्च भस्मशायी यवाशनः ॥२६॥

भस्मना सिद्धिमाप्नोति भस्मनिष्ठः सुसाधकः ।
भास्करस्य व्रतं ह्येतदन्ते ह्युक्तं क्रमागतम् ॥२७॥

अपक्व द्रव्य भोजन करके यथालाभ से तुष्ट होकर देही देहसाधन करे। ज्येष्ठ की तप्त बालुका में घृत से लिप्त होकर सृष्टि का जप किया जाता है। जप के अन्त में मन्त्री अष्ट शान्तियुक्त शिव के समान दीप्त हो जाता है। भस्मधारी, भस्मशायी तथा यव का भोजन करके विचरण करे। भस्मनिष्ठ साधक भस्म से सिद्धिलाभ करते है। यह है—भास्कर का व्रत। बाकी क्रम से कहा जायेगा।।२५-२७।।

क्रमात्संक्रमणं चैव क्रमाद्विद्वेषतां व्रजेत् ।
संक्रमेद् देहमाक्षिप्य दृष्ट्वैवं क्रमयेत् परान् ॥२८॥
इच्छया विचरेन् मन्त्री व्रतान्ते बीजवर्त्मनि ।
यदुक्तं मन्त्रकोष्ठे तु तस्मिन् शास्त्रे ह्यनेकशः ॥२९॥
कन्दमूलफलं पत्रमस्विन्नं स्विन्नमेव च ।
अशक्तो विधिरुक्तो यमष्टौ ग्रासानुपानयेत् ॥३०॥

क्रम से संक्रमण होता है। क्रम से विद्वेश्वरत्व की प्राप्ति होती है। ऐसा देखकर अन्य का अतिक्रमण करे तथा देहत्याग करके (विद्वेश्वरत्व में) संक्रमण करे। व्रत के अन्त में बीजवर्त्म में इच्छापूर्वक मन्त्रविचरण करके रहे, जैसा कि मन्त्रकोष्ठ में कहा गया है (उस प्रकार से)। उस शास्त्र में अनेक बार यह बतलाया गया है। भोजन में कन्द-मूल-फल-कच्चे पत्ते अथवा सूखे पत्ते ग्रहण करे। ऐसा करने में असमर्थ होने पर आठ ग्रास ग्रहण करना चाहिये।।२८-३०।।

भक्ष्यं वा विधिसम्पन्नं मन्त्रे सम्पानवर्जितम् ।
पावकं विधिवत्सिद्धं कुर्य्यान् मन्त्रस्य साधने ॥३१॥
पूजामन्त्रस्य वै मन्त्री संवत्सरतनुस्थितैः ।
व्योमस्थं वा तथाग्निस्थं कुर्यात् पूर्वं यमेन वै ॥३२॥

अथवा विधिसम्मत पानवर्जित भिक्षाद्रव्य मन्त्रों से ग्रहण करना चाहिये। मन्त्र के साधनार्थ यथाविधि अग्नि सिद्धि करे। जैसे पूर्व में यम ने व्योमस्थ अथवा अग्निस्थ मन्त्र का साधन किया था, वैसे ही संवत्सर तनुस्थित मन्त्रों द्वारा मन्त्री पूजामन्त्र की साधना करे।।३१-३२।।

अनुलोमाद्वयं स्यात् क्षुरिका कर्मभेदिनी ।
कर्त्तरीकवचं घोरं शलाकात्रय एव च ॥३३॥
अर्गलास्तु शिरः सौम्यः स्वाकायो निःशिखा पराः ।
प्रतिमास्थाः परा एता ह्यष्टौ ताः शक्तियोनयः ॥३४॥

अनुलोम में हृदय होता है। कर्मभेदिनी क्षुरिका, कर्त्तरी, कवच, घोर शलाकात्रय, अर्गल, शिर, सौम्य स्वकाय निःशिखा तथा परा, प्रतिमास्थित परा—ये आठ शक्तियोनि हैं।।३३-३४।।

पूर्वपश्चिमयोश्चैव दक्षिणोत्तरयोस्तथा।
विदिक्षु चानुपूर्वेण स्वरान् सम्पूजयेत् क्रमात्॥३५॥
प्रत्यहं यजनं कुर्याद्रात्रौ वापि हि साधकः।
द्रव्याभावे जपेनापि साधयेन् मन्त्रतत्परः॥३६॥

पूर्व तथा पश्चिम दिक्, दक्षिण तथा उत्तर एवं सभी विदिक् में आनुपूर्विक स्वर-समूह के द्वारा आनुपूर्विक क्रमानुरूप स्वरसमूह की सम्यक् पूजा करे। साधक नित्य यजन करे। रात्रि में भी करे। द्रव्य का अभाव होने पर जल से ही मन्त्रतत्पर होकर साधन करना चाहिये।।३५-३६।।

चतुष्कं साधयेन्नित्यमेकैकस्य पृथक्-पृथक्।
क्षुरिकादिशलाकान्तामर्गलां चैव साधकः॥३७॥

इति श्रीसाम्बपुराणे ज्ञानोत्तरे साधनविधिर्नामैकाशीतितमोऽध्यायः

●

चतुष्क का (चार का) नित्य साधन करना चाहिये। एक-एक का पृथक् भाव से क्षुरिका, कर्त्तरी, कवच, घोर शलाकात्रय का एवं अर्गला का साधन करे।।३७।।

श्री साम्बपुराणोक्त ज्ञानोत्तर में साधनविधि नामक इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त

●

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

(हृदयपुष्पम्)

अथातः परमं गुह्यं मन्त्रसारसमुद्भवम्।
यैर्व्याप्तमखिलं सर्वं मन्त्रं वै स चराचरम् ॥१॥

सामान्या सर्वसैवास्ते चराणाङ्कः फलव्याप्तं समया तु मध्यो-मध्यो निविध्यो-मङ्किक्रो समनीनाम परम परम क्षुरिकास्क फट् ना अयथाना अयन्ताना अपवासि-नोऽपि किंचु महामुखो नामकर्त्तरी। यः फट् सम्पापीड़ायोगतश्च गायवान् रुचमाश्चि गां गीं गुं पञ्चक्रमेशा नाम शलाका। परमेष्ठिनस्यैताध्यायन् प्रेतजिह्वामूलीयूपरम्। दक्षिणा। ततो हरा नाम योगशलाकार्कस्य चरणैताः। फटन्तु मूलजाह्वेषायह्वाङ्ग-ददेशवायव्यादिन्द्ररोचनानाम क्षुरिका। सर्वासां मंगला ह्येषा निरोधिनी नाडीनां चतुष्कला निरञ्जनस्य क्षुरिका सर्वमन्त्रहृदया सर्वान् संक्रामयति। सर्वव्रतैश्च स्यात्र-योनामन्त्राणां कर्मणि करोति। लक्षकविंशके क्षुरिका समाप्ताः।

अब मन्त्रसार समुद्भव की परम गुह्य कथा कहते हैं, जिसके द्वारा चराचर सकल मन्त्र व्याप्त है। सामान्य इत्यादि कर्त्तरी है। 'यः फट्' इत्यादि शलाका है। 'हरा' नाम इत्यादि क्षुरिका है। सर्वमंगलरूपा नाड़ियों में निवासिनी, निरंजन की चक्षुकला, सर्वमन्त्रों की हृदयरूपा क्षुरिका सभी मन्त्रों में संक्रमण करती है। समस्त व्रतों में प्रयुक्त होकर मन्त्रों का कर्म करती है। बीस लाख में क्षुरिका मन्त्र समाप्त है।

ब्रह्मोवाच

आलयः सर्वभूतानां लयनाल्लिङ्गमुच्यते।
हृदि भावमिदं लिङ्गं सर्वजन्मवतां स्थितम् ॥२॥

ब्रह्मा कहते हैं समस्त प्राणियों की उत्पत्ति तथा विनाश के लिये उसे लिंग कहा जाता है। जो जन्म लाभ करते हैं, उन सबके हृदय में इस प्रकार से लिंग रहता है।।२।।

**सदार्चयन्ति विद्वांसो भावपुष्पैर्हृदि स्थितैः।
भावजैः सुमनोभिश्च तमर्चेन्नान्यजैर्बुधैः ॥३॥
ब्रह्माक्षरपदैर्दिव्यैर्जरामरणकारकैः।
प्रफुल्लपद्मसंस्थाने सुहृद्ये तिष्ठतो मुखे ॥४॥**

विद्वान् गण सर्वदा हृदयस्थ भावपुष्पों से अर्चना करते हैं। विज्ञ व्यक्ति भावज पुष्पों से उनकी अर्चना करे; अन्य (वृक्षादि से उत्पन्न) पुष्पों से अर्चना न करे। जरा एवं मरण

को दिव्य ब्रह्माक्षर पद द्वारा प्रस्फुटित पद्मतुल्य सुन्दर हृदय में अवस्थित करके विज्ञजन को अर्चना करनी चाहिये।।३-४।।

हृदयं तु विजानीयाद्विश्वस्यायतनं महत्।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच महेश्वरः ॥५॥

हृदय को विश्व का महत् आयतन जानना चाहिये। उनकी यह बात सुनकर प्रत्युत्तर में महेश्वर ने कहा।।५।।

शृणु यत्नेन वचनं पुष्पाणि कथयामि ते।
अहिंसा प्रथमं पुष्पं तथा चेन्द्रियनिग्रहः ॥६॥
धृतिपुष्पं क्षमापुष्पं शौचं पुष्पं च पञ्चमम्।
अक्रोधः षष्ठपुष्पं तु ह्रीपुष्पं चैव सप्तमम् ॥७॥

सयत्न मेरी बता सुनो। तुमको (हृदयस्थ) पुष्पों की बात बतलाता हूँ। अहिंसा प्रथम पुष्प है, इन्द्रियनिग्रह है—द्वितीय पुष्प। तृतीय है—धृति पुष्प। चतुर्थ है—क्षमा पुष्प। पञ्चम है—शौच पुष्प। षष्ठ को अक्रोध कहते हैं। सप्तम पुष्प है—लज्जा।।६-७।।

सत्यं चैवाष्टमं पुष्पमेभिः प्रीयेत वै शिवः।
एतान्यष्टौ च पुष्पाणि चाक्षयान्यव्ययानि च ॥८॥
एतानि भावतो येन प्रकल्पेन निवेदयेत्।
एभिर्यस्तु सदा पुष्पैरर्चयेच्छिवमव्ययम् ॥९॥

सत्य है—अष्टम पुष्प। इन सबसे शिव प्रसन्न होते हैं। ये आठो पुष्प अक्षय एवं अव्यय हैं। इन समस्त भावनारूप को जल से निवेदित करना चाहिये। इन समस्त पुष्पों द्वारा सर्वदा जो अव्यय शिव की अर्चना करते हैं।।८-९।।

उद्घाट्य तु तमोद्वारं शिवं पश्येन्निरञ्जनम्।
कृत्वा यमैस्तु लिङ्गं वै प्रत्याहारैस्तु वैदिकम् ॥१०॥
ध्यानधारणपुष्पैस्तु चार्चयेच्छिवमव्ययम्।
शरीरे दीपयेदग्निं न्यासं कृत्वा तृणेन्धनम् ॥११॥

वे तमोद्वार को पार करके निरंजन शिव का दर्शन प्राप्त करते हैं। यम से (संयम से) लिंग तथा प्रत्याहार द्वारा वैदिक (?) का (संयमन करके) ध्यान तथा धारणरूप पुष्पों से अव्यय शिव की अर्चना करनी चाहिये। शरीर में अग्नि प्रज्वलित करे, तृण काष्ठ के समान न्यासविधान से। (जैसे भौतिक अग्नि तृण-काष्ठ से प्रज्वलित होती है, वैसे शरीराग्नि न्यास विधान से प्रज्वलित होती है)।।१०-११।।

युञ्जयेदुद्गतान् दोषान् मनःकृत्वा सुनिश्चितम्।
विस्तीर्णाद्धारणाच्चैव नासाग्रे चिन्तयेच्छिवम् ॥१२॥